ISSN (p) : 2394-3912
ISSN (e) : 2395-9369

त्रैमासिक 13(3) जुलाई-सितम्बर, 2026
Technical articles are peer reviewed

www.kahaar.in

कहार

जनविज्ञान की बहुभाषाई पत्रिका

KAHAAR

A Multilingual People Science Magazine

विशेष खण्ड: कृषि में कीट प्रबन्धन

प्रकाशक
प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसाइटी, लखनऊ
(www.phssfoundation.org)
सह-प्रकाशक
पृथ्वीपुर अभ्युदय समिति, लखनऊ (www.prithvipur.org)

प्रो. एच. एस. श्रीवास्तव फाउंडेशन (CSAE) द्वारा 22 जून 2026 को बाराबंकी के अकटहिया गाँव में किसान गोष्ठी का आयोजन किया गया। मानसून के दौरान स्वास्थ्य सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए करीबी 30 लोगों को मच्छरदानी दी गयी, जिसमे 14 महिलाएं 14 पुरुष और 2 किशोर थे। बैठक में उपस्थित किसानों के साथ कृषि से संबंधित विभिन्न समस्याओं पर उनके अनुभव, ज्ञान और कठिनाइयों पर आधारित सार्थक चर्चा भी हुई। पिछले वर्ष वितरित किए गए पौधों की समीक्षा के दौरान किसानों ने बताया कि कई पौधे बहुत अच्छे बढ़ रहे हैं, परंतु कई एक–दो साल में सूख जा रहे हैं। इसका कारण शायद मिट्टी और देख–रेख की कमी है। किसानों ने अपनी समस्या बताते हुए कहा कि कुछ पौधों का विकास क्यों रुक गया है, हमें पता नहीं चलता। कुछ बड़े होकर भी सूख जा रहे हैं। महासचिव प्रो. राणा प्रताप सिंह ने पौधों के सूखने का मुख्य कारण मिट्टी में पोषण की कमी और रूट रॉट (फफूंदी) को बताया। इंजीनियर विनय कुमार त्रिपाठी ने मानसून के पानी के जमाव (वाटरलॉगिंग) से बचाव और जल निकासी सुधारने की सलाह दी। कार्यक्रम में संस्था के सदस्य श्री मिराज उद्दीन ने ग्रामीण विकास, सामुदायिक सहभागिता और गाँव की समस्याओं के निदान पर चर्चा की। प्रशासनिक अधिकारी श्री कृष्णानंद सिंह ने किसानों को जल्द ही गाँव में मिट्टी परीक्षण (सोइल टेस्टिंग) शिविर लगाने का आश्वासन दिया। सभी ने गाँव की महिला कोऑर्डिनेटर श्रीमती दुर्गवाती और पुरुष कोऑर्डिनेटर श्री विजय सिंह के द्वारा लोगों को जुटाने और संस्था के कार्यक्रमों मे रुचि लेने की सराहना की। अन्य महिलाओं और पुरुषों ने भी अत्यंत उत्साहपूर्वक कार्यक्रम मे भागीदारी की। यह कार्यक्रम सभी सदस्यों और ग्रामीणों की सक्रिय भागीदारी के साथ सफलतापूर्वक संपन्न हो गया।

Technical articles are peer reviewed

कहार

www.kahaar.in

कहार

जनविज्ञान की बहुभाषाई पत्रिका

त्रैमासिक, 13(3) जुलाई–सितम्बर, 2026

A Multilingual People Science Magazine

प्रधान संपादक
प्रोफेसर राणा प्रताप सिंह, लखनऊ
अतिथि संपादक
डॉ. रूद्र प्रताप सिंह, कुमारगंज, अयोध्या
कार्यकारी सम्पादक
श्री कृष्णानन्द सिंह, लखनऊ
सह–सम्पादक
डॉ. बसंत माहेश्वरी, पेनरिथ, ऑस्ट्रेलिया
डॉ. निहारिका शंकर, नोएडा
डॉ. अर्चना सिंह, ब्रैनफोर्ड, यूएसए
श्री आकाश वर्मा, लखनऊ
श्री सुनीत कुमार यादव, मऊ
श्री शुभम अभिषेक, धनबाद
श्री पवन कुमार, लखनऊ
सम्पादक मण्डल
प्रोफेसर सुनीता मिश्रा, लखनऊ
प्रोफेसर राकेश सिंह सेंगर, मेरठ
श्री नरसिंह, देवरिया
श्री हरीशचन्द्र दहिया, गुडगाँव
डॉ. संजय सिंह, झांसी
श्री अनिल जैन, नई दिल्ली
श्री अनिल सिंह, लखनऊ
डॉ. मनोज गर्ग, लखनऊ
डॉ. पीयूष गोयल, नई दिल्ली
श्री मेराज उद्दीन सिद्दीकी, लखनऊ
डॉ. अनुज कुमार सक्सेना, सीतापुर
सलाहकार मण्डल
प्रोफेसर सरोज कान्त बारिक, शिलांग
डॉ. प्रफुल्ल वी. साने, जलगाँव, महाराष्ट्र
डॉ. राम सनेही द्विवेदी, लखनऊ
डॉ. राजेन्दर सिंह जलपुरुष, भीखमपुरा, राजस्थान
डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय, बालापार, गोरखपुर
डॉ. रूद्रदेव त्रिपाठी, लखनऊ
प्रोफेसर एन. रघुराम, दिल्ली
प्रोफेसर योगेश शर्मा, लखनऊ
डॉ. सी. एम. नौटियाल, लखनऊ
डॉ. शक्ति के. प्रभुजी, गोरखपुर
डॉ. सुमन कुमार सिन्हा, गोरखपुर
प्रोफेसर शिल्पी वर्मा, लखनऊ
डॉ. धीरज कुमार सिंह, नोएडा
प्रोफेसर रणवीर दहिया, रोहतक
डॉ. सुधाकर तिवारी, कुशीनगर
डॉ. मनोज कुमार पटैरिया, नई दिल्ली
डॉ. सिराज वजीह, गोरखपुर
प्रोफेसर मालविका श्रीवास्तव, गोरखपुर
इं. तरूण सेंगर, कारमेल, यूएसए
श्रीमती मधु करमेल, यूएसए
श्री उपेन्द्र प्रताप राव, दुदही
श्री अविनाश जैसवाल, दुदही
डॉ. मनीष सेंगर, रोहतक
डॉ. पूनम अहलावत, चण्डीगढ़

आवरण फोटो
श्री प्रकाशवीर सिंह, लखनऊ
प्रबंध–संपादक
श्री अंचल जैन, लखनऊ
सोशल मीडिया
श्री रणजीत शर्मा, लखनऊ
श्री योगेन्द्र प्रताप सिंह, लखनऊ
टाइप सेटिंग और प्रोडक्शन
श्री जावेद अहमद, लखनऊ

घोषणा

लेखक के विचार से कहार टीम का सहमत होना जरूरी नहीं हैं। किसी रचना में उल्लेखित तथ्यात्मक भूल के लिए 'कहार' की टीम जिम्मेदार नहीं होगी।

कार्यालय : 04, पहली मंज़िल, एल्डिको एक्सप्रेस प्लाजा, शहीद पथ, उतरेठिया, रायबरेली रोड, लखनऊ–226 025, भारत
ईमेल: kahaarmagazine@gmail.com/
dr.ranapratap.59@gmail.com

सदस्यता / Subscription* (Print Copy)

एक प्रति रुपये 250/– वार्षिक (4 प्रति) रुपये 1000/–
वार्षिक (10 प्रति) रुपये 9000/– (100 प्रति) रुपये 22000/–
(डाक व्यय सम्मिलित)

विज्ञापन (Advertisements)

Rs. 10,000/- Full Page (B/W)   Rs. 6,000/- Half Page (B/W)
Rs. 15,000/- Full Page (Color) Back Cover

सहयोग राशि 'प्रोफेसर एच..एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसायटी : लखनऊ (Prof. H.S. Srivastava Foundation for Science and Society, Lucknow) के नाम भेजे।

खाता संख्या 2900101002506, केनरा बैंक, बी.बी.ए., विश्वविद्यालय, लखनऊ IFSC: CNRB0002900

लेखकों के लिए

वैचारिक रचनाओं में आवश्यक संदर्भ भी दें, एवम् इन संदर्भों का विस्तार रचना के अंत में प्रस्तुत करें। अंग्रेजी रचनाओं का हिन्दी तथा हिन्दी सहित अन्य भाषाओं की रचनाओं का अंग्रेजी या हिन्दी में सारांश दें। मौलिक रचनाओं के साथ रचना के स्वलिखित, मौलिक एवम् अप्रकाशित होने का प्रमाण पत्र दें। लेखक पासपोर्ट साइज फोटो भी भेजें। रचनाएँ English के Times New Roman (12 Point) और हिन्दी में मंगल/यूनिकोड में कन्वर्ट कर के भेजें। फोटो या रेखाचित्र अलग से और चित्र संख्या के साथ भेजे।

कहार एक पारम्परिक मनुष्य वाहक के लिए प्राचीन देशज सम्बोधन है। कहार की तरह ही यह पत्रिका जानकारियों एवं लोगो के बीच सेतु बनने की कोशिश कर रहा है।

अनुक्रमणिका (Content)

क्र.सं. / Sl. No.	शीर्षक / Heading	लेखक / Author	पृष्ठ / Page
●	सम्पादकीय (हिंदी और अंग्रेजी)	राणा प्रताप सिंह	
1.	कृषि स्थिरता में कीटों की भूमिकाः खाद्य उत्पादन के लिए लाभकारी और हानिकारक कीट	रूद्र प्रताप सिंह	1-2
2.	विद्या की महिमा (संस्कृत उद्धरण)	गणेश शंकर वाजपेयी और आलोक पांडेय (प्रस्तुति)	2
3.	कृषि फसलों के कीटः चुनौतियाँ और टिकाऊ प्रबंधन	अमन यादव, अनिल पटेल, रुद्र प्रताप सिंह' और विनोद कुमार दुबे	3-6
4.	मधुमक्खी पालन में युवाओं की भूमिकाः स्वरोजगार, उद्यमिता विकास, जैव विविधता संरक्षण एवं टिकाउ खेती को बढ़ावा	अनिल पटेल, रुद्र प्रताप सिंह, प्रदीप कुमार दलाल, शिवांगी माहेश्वरी, रिची अवस्थी एवं अमन यादव	7-10
5.	Role of Pollinators in Agro – Ecosystem	Divyashree P, Richi Awasthi1, Rudra Pratap Singh and Ambethgar V	11-14
6.	बेसुरे माणस (हरियाणवी गीत)	मंगतराम शास्त्री 'खड़तल'	14
7.	From Chemical Control to Biological Solutions Evolving Paradigms in Pest Management Research	Shiv Kumar Sharma, Pankaj Kumar, Pradeep K. Dalal and S.B. Singh	15-22
8.	पिता / शांति (कविताएं)	राणा प्रताप सिंह	22
9.	Role of Pollinators in Agro – Ecosystem	Divyashree P, Richi Awasthi, Rudra Pratap Singh and Ambethgar V	23-25
10.	नवीन ज्ञान—क्रन्ति : आत्मनिर्भर भारत हेतु शिक्षा, प्रौद्योगिकी तथा स्वदेशी ज्ञान का एकीकरण कृ एक पंच—आयामी परिप्रेक्ष्य	मनोहर लाल (कौशिक)	26-28
11.	धरती का बढ़ रहा है ताप	स्वाति सक्सेना	28
12.	संकर धान उत्पादन प्रमुख बाधाएं एवं रणनीतियां	शालिनी गुप्ता एवं आर.एस.सेंगर	29-31
13.	वसुधैव कुटुम्बकम (संस्कृत लघुकथा)	गणेश शंकर बाजपेयी	31
14.	गेहूं की फसल में उच्च ताप का तनाव प्रभाव और प्रबंधन	अंकित तिवारी, जगन्नाथ पाठक, शिवम सिंह3 एवं अवधेश कुमार त्रिपाठी4	32-34
15.	शक्ति का रूप—नारी (हिंदी कविता)	वाय सी झाला	34
16.	भारत में रासायनिक खादों के इस्तेमाल की क्षमता में सुधार	नंदुला रघुराम	35
17.	एक उपेक्षित भाषा और संस्कृति की पुनर्स्थापना के प्रयास	नरसिंह	36-37
18.	नालंदा के उजास आ सरहपा के सहजता (भोजपुरी लेख)	रवींद्र नाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास'	38-39
19.	हृदयात् निर्गत कथा (संस्कृत लघुकथा)	गणेश शंकर बाजपेयी	40
20.	किसान (हिंदी कविता)	राणा प्रताप सिंह	40
21.	Green Business and Green Marketing: An Integrative Review	N. P. Chandni and Sushmitha Baskar	41-47
22.	बेरा सै के! (हरियाणवी गीत)	मंगतराम शास्त्री 'खड़तल'	47
23.	Ashwagandha: An Ancient Herb for Modern Health	Sunita Mishra and Kuril Sanjeet	48-57
24.	The New Knowledge Revolution: Integrating Education, Technology and Indigenous Wisdom for Ātmanirbhar Bharat— A Five-Dimensional Perspective	Manohar Lal (Kaushik)	58-60
25.	'नैनो' (हिंदी कविता)	निधि त्यागी	60

सम्पादकीय

भूख, भय और भोजन के बदलते संकट

कहा जा सकता है, कि कभी लोगों को भूख से भय लगता था, और अब भोजन से भय लगता है। परतंत्र भारत और स्वाधीनता के शुरुआती दिनों में देश की कुल जनसंख्या जब कम थी, तब भी बहुत से लोगों को भर पेट भोजन नहीं मिलता था। खेती का पोषण देशी बीजों, पशुओं के गोबर और बरसाती पानी पर निर्भर था। लोग पीढ़ी दर पीढ़ी बीज बचा कर रखते थे। आवश्यकता पड़ने पर बो लेते, बांट लेते या खरीद–बेंच लेते। खेती में श्रम अधिक था। लोग मन लगा कर काम करते पर उपज कम थी। तब भी लोग खेती को उत्तम पेशा मानते थे। खेत खलिहान का सम्मान था। हर काम पूजा–पाठ, गीत–मंगल से शुरू होता।

लघु और सीमान्त किसानों को अपने परिवार और पशुओं के साथ सारे वर्ष खेती–बाड़ी में लगे रहने के बाद भी बमुश्किल कुछ महीनों के उपयोग भर का अनाज, दलहन, तेल आदि मिल पाता था। किसानों को खेती–बाड़ी से पैसे की कोई बचत नहीं होती। सपरिवार हाँड़–तोड़ मेहनत करके भी मजदूरों की मजदूरी और सामाजिक सुरक्षा बहुत कम थी।

स्थितियां पहले से कुछ अच्छी हुई हैं, और कुछ बुरी भी। भूख और भोजन का रिश्ता सीधा और सपाट नहीं होता। यह बहुत घुमावदार और पेचीदा है। किसान और मजदूर की आय और उसकी आर्थिक–सामाजिक हैसियत का आधार मात्र कृषि उपज नहीं, बल्कि कई तरह की व्यवस्थात्मक, सांस्कृतिक और सामाजिक नियम और परम्पराएँ भी हैं।

अब जमीनें बहुत महंगी हो गयी हैं, और खेती करने की लागत भी बहुत बढ़ गयी है। हरित क्रांति के दौरान विकसित किये गए के बौने बीजों से उपज तो काफी बढ़ी, पर इस नई तकनीकी खेती में पानी और रासायनिक खादों, विशेष रूप से यूरिया और डीएपी की खपत बहुत बढ़ गयी। कीटों और अन्य फसलों से होने वाली बीमारियों से बचाने के लिए कीटनाशकों का बेतहाशा प्रयोग होने लगा है।

अमेरिका की मदद से अपनाई गयी हरित क्रांति में अनाजों के बौनी नस्ल के बीज, सिचाई के लिए बनाये गए नल कूपों और नहरों के संजाल, रासायनिक खादों और संश्लेषित कीट नाशकों के बढ़ते उपयोग तथा यूरिया पर भारी सब्सिडी, और सरकारी समर्थन मूल्य आदि ने गेहूं, धान, मक्का, गन्ना आदि कई फसलों की उपज और साथ ही इनके रकबे को बहुत तेजी से बढ़ा दिया। तेजी से बढ़ती आबादी के बावजूद हमारा देश अनाजों का निर्यात करने की स्थिति में आ गया। राशन की दुकानों से बड़ी संख्या में गरीब लोगों को पहले सस्ता और कोरोना काल के बाद निशुल्क अनाज दिया जाने लगा है।

परन्तु कृषि रसायनों के जहर से जमीन से पोषण देने और फसलों के रोग नियंत्रित करने वाले बैक्टीरिया और कवक कम होने लगे हैं। फसलों की विविधता, फसलों के सूक्ष्म पोषक तत्व और मिट्टी का कार्बन तेजी से घटने लगा है। मिट्टी और पानी के विषाक्त होने से सभी तरह के खाद्य पदार्थ जहरीले होकर अनेकों तरह के जाने–अनजाने रोगों के वाहक बन गए हैं।

भोजन की उपलब्धता और खाद्य सुरक्षा कृषि उपज के अलावे, उत्पादों की संग्रहण क्षमता, खाद्य–पदार्थों की वितरण व्यवस्था तथा उसकी गुणवत्ता पर भी निर्भर करती है। समकालीन सरकारों की नीतियां तथा जमीन पर उनका सही कार्यान्वयन बड़ा असर करता है। लोगों की जागरूकता भी भूख और भोजन के भय को दूर करने में बहुत जरूरी भूमिका निभाती है। समाज की सामाजिक–सांस्कृतिक परम्पराएँ, पर्यावरण की पारिस्थितिकी और कृषि, बागवानी तथा पशुपालन का अर्थशास्त्र और प्रचलित तकनीकें समाज के भिन्न स्तर पर खड़े लोगों के लिए भोजन की उपलब्धता और गुणवत्ता तय करने के प्रमुख कारक हैं।

इसलिए भूख से निजात और सही तरह की खाद्य सुरक्षा स्थापित करने के लिए किसानों, कृषि उद्योगों और कृषि मजदूरों की स्थिति तथा मनःस्थिति की पड़ताल जरूरी है। साथ ही कृषि से जुड़ी नीतियों और इनके नियंत्रण–तंत्र का सही और जमीनी मूल्यांकन भी उतना ही जरूरी है। विज्ञान का दर्शन और इसकी सार्वभौमिक कार्य प्रणाली इसमें मदद कर सकती है, पर अर्थशास्त्र द्वारा संचालित समकालीन वैश्विक व्यवस्था में विज्ञान युद्ध और बाजार को तकनीकी तथा उद्योगों और ग्राहकों को संश्लेषित सामान उपलब्ध कराने वाले न्यूनीकरणवादी सोच का शिकार हो गया है। उसका दर्शन और उसकी अनूठी कार्यप्रणाली फिलहाल हमारे समूचे सामाजिक विमर्श में गायब है।

चुनौतियाँ कई हैं। समय के साथ भरपाई से अधिक इस्तेमाल से अब जमीन के भीतर और ऊपर का पानी तेजी से घटने लगा है। अधिक पोषण युक्त और मौसम के अनुकूल श्री अन्न कहे जाने वाले अनाजों का रकबा हरित क्रांति के दौर से ही लगातार घटता गया। वायु से जमीन में नत्रजन स्थिर करने वाली दलहन फसलें और उपयोगी तिलहन और फाइबर देने वाली फसलें अब बहुत कम हो गयी हैं, क्योंकि उनकी उपज और खरीद व्यवस्था, गेहूं धान जैसे अनाजों की तरह व्यवस्थित नहीं हो सकी है। एक फसली और रासायनिक खेती से अनेक देशी मौसम अनुकूल फसलों के बीज तथा जमीन के भीतर के उपयोगी जीवाणु, फफूंद, कीड़े–मकोड़े, केंचुआ और खेतों में उड़ने वाले पक्षी, फसलों में परागण कराने वाली मधुमक्खियाँ, तितली, पतंगे आदि समाप्त होने लगे हैं। मिट्टी, पानी, हवा के अलावे बैक्टीरिया, कवक और कीड़े–मकोड़ों के साथ पशुओं और मनुष्यों के खाद्य पदार्थ भी जहरीले रसायनों से भरते जा रहें हैं, और हमारी बड़ी आबादी कैंसर, गैस और गठिया आदि जैसे जाने–अनजाने बीमारियों की चपेट में आती जा रही है।

किसान खेती नहीं करना चाहता। कृषि उद्योग खड़े नहीं हो पा रहे हैं। खेती–बाड़ी से जुड़े लोग तब भी बदहाल थे, अंब भी बदहाल हैं, और खाद्य सुरक्षा स्वाद विहीन, पोषण विहीन और जहरीली होती जा रही है। रही–सही कसर सब्जियों और फलों को जल्दी बढ़ाने और पकाने वाले रसायन और दूध आदि में होने वाली मिलावट वाले जहरीले रसायनों ने कर दी है।

अब प्राकृतिक खेती और जैविक उत्पादों की फिर से बात हो रही है। यह एक अच्छी प्रगति हैं। जैविक, कार्बनिक, प्राकृतिक और पारिस्थितिकी खेती की कई तरह की वैज्ञानिक और अर्ध–वैज्ञानिक विधियाँ उपलब्ध हैं, पर इनको लेकर किसानों, उद्योगों, वैज्ञानिकों और कृषि प्रशासकों में भारी भ्रम है। जलवायु परिवर्तन, बढ़ती आपदाओं, अस्पष्ट नीतियों और जिम्मेदारों की गैर जवाबदेही के बीच हम कृषि, पोषण और खाद्य–सुरक्षा के साथ एक बड़ी ग्रामीण आबादी जो खेती–बाड़ी से जुड़ी है, को गरीबी के चक्रव्यूह से निकाल ही नहीं पा रहे हैं। इस असमंजस से निकल कर जितनी जल्दी हम भूख और भोजन के सवालों को हल कर लें, हमारे विकसित भारत अभियान के लिए यह उतना ही अच्छा रहेगा।

राणा प्रताप

(राणा प्रताप सिंह)

Editorial

The Changing Crises of Hunger, Fear, and Food

Many people say that there was a time when the people were suffering from fear of hunger, whereas now, the fear is of the food itself which is contaminated with toxic substances. In pre-independent India and the early days of freedom—when the total population was much lower—many people still did not get enough to eat. Agriculture relied on indigenous seeds, animal manure, and rainwater. People preserved seeds from generation to generation, sowing, sharing, or trading them as the need arose. Farming was labor-intensive; people worked with dedication, yet yields were low. Even so, farming was considered a noble profession, and the fields and threshing grounds were held in high regard. Every task began with prayers and auspicious songs.

Small and marginal farmers, despite toiling in the fields all year round with their families and livestock, could barely produce enough grain, pulses, and oil to last a few months. Farmers saved no money from agriculture; even after back-breaking labor involving the whole family, wages for hired hands and social security provisions remained woefully inadequate.

Conditions have improved in some respects compared to the past, while worsening in others. The relationship between hunger and food is neither simple nor straightforward; it is complex and multifaceted. A farmer's or laborer's income and socio-economic status are determined not merely by agricultural produce, but also by various systemic, cultural, and social norms and traditions.

Land has become extremely expensive, and the cost of cultivation has skyrocketed. While the dwarf seed varieties developed during the Green Revolution significantly boosted yields, this new technological approach to farming led to a massive increase in the consumption of water and chemical fertilizers—particularly urea and DAP. Furthermore, the indiscriminate use of pesticides has become rampant to protect crops from pests and diseases. The adoption of dwarf grain varieties (introduced during the Green Revolution with US assistance), the creation of tube-well and canal networks for irrigation, the increasing use of chemical fertilizers and synthetic pesticides, heavy subsidies on urea, and government support prices have rapidly boosted both the yields and the cultivated areas of crops like wheat, paddy, maize, and sugarcane. Despite a rapidly growing population, our country has reached a position where it can export food grains. Large numbers of poor people have begun receiving subsidized grain through ration shops—and, following the COVID-19 pandemic, free grain.

However, the toxicity of agrochemicals has led to a decline in the bacteria and fungi that nourish the soil and control crop diseases. Crop diversity, the micronutrient content of crops, and soil carbon levels have begun to plummet. As soil and water become toxic, food products themselves have become contaminated, acting as carriers for various known and unknown diseases.

Food availability and food security depend not only on agricultural output but also on storage capacity, distribution systems, and food quality. The policies of successive governments and their effective implementation on the ground play a significant role. Public awareness also plays a crucial part in alleviating hunger and the fear of food insecurity. Socio-cultural traditions, environmental ecology, and the economics and prevailing technologies of agriculture, horticulture, and animal husbandry are key factors determining the availability and quality of food for people across different strata of society.

Therefore, to eliminate hunger and establish genuine food security, it is essential to examine the conditions and mindsets of farmers, the agro-industry, and agricultural laborers. Equally important is a proper, ground-level assessment of agricultural policies and their regulatory mechanisms. While the philosophy of science and its universal methodology could assist in this regard, in the contemporary global order driven by economics, science has fallen victim to a reductionist mindset—one that serves war and markets through technology, and supplies synthetic goods to industries and consumers. Its philosophy and unique operational methodology are currently absent from our entire social discourse.

There are many challenges. Over time, due to excessive extraction and less compensation both groundwater and surface water levels have begun to deplete rapidly. Since the era of the Green Revolution, the acreage dedicated to nutrient-rich, climate-resilient grains—known as *Shree Anna* (millets)—has steadily declined. Nitrogen-fixing pulse crops, as well as useful oilseed and fiber crops, have dwindled significantly because their production and procurement systems were never as organized as those for staples like wheat and paddy. Monoculture and chemical-intensive farming have led to the disappearance of seeds for indigenous, climate-resilient crops, as well as beneficial soil organisms—such as bacteria, fungi, insects, and earthworms—and field-dwelling birds, pollinators like bees, butterflies, and moths. Beyond soil, water, and air, toxic chemicals are contaminating bacteria, fungi, and insects, as well as the food consumed by animals and humans; consequently, a vast section of our population is falling prey to various ailments, both known and unknown, such as cancer, gastric issues, and arthritis.

Farmers are reluctant to continue farming. Agro-industries are failing to take off. Those involved in agriculture were in dire straits in the past and remain so today, while food security is being compromised by a lack of nutrition and the presence of toxins. To make matters worse, toxic chemicals used to accelerate the growth and ripening of fruits and vegetables, along with adulterants in milk and other products, have further exacerbated the situation.

There is now talk of natural farming and organic products. Various scientific and semi-scientific approaches to organic, carbon-based, natural, and ecological farming are in talk and practices.

Various methods are available, yet there is considerable confusion regarding them among farmers, industries, scientists, and agricultural administrators. Amidst climate change, escalating disasters, ambiguous policies, and the lack of accountability among those responsible, we are failing to lift the food quality and vast rural population engaged in farming—along with the sectors of agriculture, nutrition, and food security—out of the vicious cycle of poverty. The sooner we resolve this state of uncertainty and address the issues of nutritional hunger in food, the better it will be for developed India plans.

Rana Pratap

(Rana Pratap Singh)

कृषि स्थिरता में कीटों की भूमिकाः खाद्य उत्पादन के लिए लाभकारी और हानिकारक कीट

रूद्र प्रताप सिंह

कृषि पारिस्थितिकी तंत्र में कीटों की भूमिका दोहरी और अत्यंत महत्वपूर्ण है। सामान्यतः कीटों को फसल हानि से जोड़ा जाता है, परंतु सभी कीट हानिकारक नहीं होते। कुछ कीट पौधों की पत्तियों, तनों, जड़ों, फूलों, फलों और बीजों को क्षति पहुँचाकर उत्पादन और गुणवत्ता घटाते हैं, जबकि अनेक कीट परागण, जैविक नियंत्रण, कार्बनिक पदार्थों के विघटन और पारिस्थितिक संतुलन में सहयोग करते हैं। इसलिए कृषि स्थिरता के लिए कीटों के लाभकारी और हानिकारक दोनों पक्षों को समझना आवश्यक है। इसी संदर्भ में यह सार कृषि फसलों में कीटों से होने वाली हानि, उनके टिकाऊ प्रबंधन, लाभकारी कीटों के संरक्षण और आधुनिक तकनीकों की भूमिका को एक साथ प्रस्तुत करता है।

हानिकारक कीट खाद्य उत्पादन के लिए बड़ी चुनौती हैं। धान में तना छेदक, पत्ती मोड़क, भूरा पौधा फुदका और गंधी कीट; गेहूँ में माहू और दीमक; कपास में गुलाबी सूंडी, अमेरिकन बॉलवर्म, लीफहॉपर और सफेद मक्खी; तथा दलहनी फसलों में फली छेदक, माहू, सफेद मक्खी और फली मक्खी भारी नुकसान पहुँचा सकते हैं। ये कीट पौधों को सीधे खाते हैं, रस चूसते हैं या रोगों के वाहक बनते हैं, जिससे उपज, गुणवत्ता और किसान की आय प्रभावित होती है। प्रमुख फसलों में कीटों, रोगों और खरपतवारों को फसल हानि के प्रमुख कारणों के रूप में जाना जाता है तथा इसे रोकने हेतु फसल संरक्षण उपायों की आवश्यकता पर बल दिया जाता है। इसी तरह कई अन्य कीट फसलों में आर्थिक क्षति, विषाणु प्रसार और कीटनाशी प्रतिरोध की समस्या से जुड़े हुए हैं।

रासायनिक कीटनाशकों से तीव्र गति से नियंत्रण तो मिलता है, लेकिन इनका अत्यधिक और अनियंत्रित उपयोग दीर्घकाल में गंभीर समस्या बन जाता है। कीटों में प्रतिरोधक क्षमता विकसित होती है, मिट्टी और जल प्रदूषित होते हैं, खाद्य पदार्थों में अवशेष की समस्या बढ़ती है और मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। सबसे बड़ी समस्या यह है कि व्यापक–स्पेक्ट्रम कीटनाशक केवल हानिकारक कीटों को ही नहीं, बल्कि मधुमक्खी, तितली, लेडीबर्ड बीटल, लेसविंग, मकड़ी और परजीवी ततैया जैसे अन्य लाभकारी जीवों को भी प्रभावित करते हैं। प्राकृतिक शत्रुओं की कमी से द्वितीयक कीटों का प्रकोप बढ़ सकता है और किसान फिर और अधिक कीटनाशक उपयोग करने के लिए मजबूर होता है। अतः केवल रसायन–आधारित नियंत्रण टिकाऊ कृषि का आधार नहीं बन सकता।

लाभकारी कीट कृषि उत्पादन के मौन सहयोगी हैं। मधुमक्खियाँ, तितलियाँ, मक्खियाँ और भृंग परागण कर फल और बीज उत्पादन बढ़ाते हैं। भारतीय कृषि में कीट परागण के आर्थिक संदर्भों को विशेष महत्व दिया जाता है। तिलहन, फल, सब्जियाँ, मसाले तथा रेशा फसलें परागण सेवाओं से विशेष लाभ प्राप्त करती हैं। कई फसलों में परागणकर्ताओं की सक्रियता से फल बनना, बीज संख्या, फल की आकृति, गुणवत्ता और बाजार मूल्य बेहतर होता है। इसलिए परागणकर्ता केवल पर्यावरणीय दृष्टि से नहीं, बल्कि किसान की आय और खाद्य सुरक्षा के लिए भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। कीटनाशकों, आवास विनाश और जलवायु परिवर्तन से इन्हें खतरा है, इसलिए फूलदार पौधों का संरक्षण, खेत की मेड़ों पर पुष्प पट्टियाँ और सुरक्षित छिड़काव समय अपनाना आवश्यक है।

प्राकृतिक शत्रु कीटों की आबादी को प्राकृतिक रूप से नियंत्रित करते हैं। लेडीबर्ड बीटल और लेसविंग दोनों परभक्षी माहू, सफेद मक्खी और थ्रिप्स को खाते हैं; मकड़ियाँ और परभक्षी बग खेत में उड़ने और चलने वाले छोटे कीटों को कम करते हैं; जबकि ट्राइकोग्रामा जैसी अंड–परजीवी ततैया व कई लेपिडोप्टेरन कीटों के अंडों में परजीवीकरण कर उनकी संख्या घटाती ह। इसी प्रकार *बेसिलस थ्युरिनजिएंसिस, ब्युवेरिया बैसिआना* और *मेटाराइजियम अनिसोप्ली* जैसे जैविक कारक सुरक्षित एवं पर्यावरण–अनुकूल नियंत्रण प्रदान करते हैं। जैविक नियंत्रण को समेकित कीट प्रबंधन के अंतर्गत आर्थिक और पारिस्थितिक रूप से महत्वपूर्ण घटक माना जाता है, क्योंकि प्राकृतिक शत्रु खेतों में कीटों की संख्या को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखने में सहायता करते हैं।

समेकित कीट प्रबंधन यानी आईपीएम इसी संतुलित सोच पर आधारित है। इसमें कीटों को पूर्णतः नष्ट करने के बजाय उनकी संख्या को आर्थिक क्षति स्तर से नीचे रखा जाता है। इसके अंतर्गत खेत की नियमित

[1]एसोसियेट प्रोफेसर, (कीट विज्ञान विभाग), कृषि महाविद्यालय, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या 275302, उत्तर प्रदेश, भारत

ईमेलः rudrapsingh.doe@gmail.com; rudrapsingh@nduat.org

निगरानी, सही पहचान, आर्थिक सीमा पर आधारित निर्णय, प्रतिरोधी किस्मों का उपयोग, फसल चक्र, समय पर बुवाई, खेत की स्वच्छता, संतुलित उर्वरक, फेरोमोन ट्रैप, प्रकाश ट्रैप, जैविक नियंत्रण और आवश्यकता पड़ने पर चयनात्मक कीटनाशकों का सीमित उपयोग शामिल है। यह पद्धति किसान को अनावश्यक खर्च से बचाती है और लाभकारी कीटों, परागणकर्ताओं तथा प्राकृतिक शत्रुओं को सुरक्षित रखती है।

सब्जी फसलें कीटों, रोगों और निमेटोड के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं, इसलिए इनके प्रबंधन में आधुनिक तकनीकों का महत्त्व बढ़ रहा है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग, ड्रोन, आईओटी, रिमोट सेंसिंग, रोबोटिक्स और निर्णय सहायता प्रणाली कीट प्रबंधन को अधिक सटीक बना रही हैं। इन तकनीकों से कीटों की शीघ्र पहचान, वास्तविक समय निगरानी, प्रकोप का पूर्वानुमान और स्थान–विशेष नियंत्रण संभव होता है। इससे पूरे खेत में अंधाधुंध छिड़काव करने के बजाय केवल प्रभावित भाग में लक्षित उपचार किया जा सकता है। परिणामस्वरूप कीटनाशकों की मात्रा घटती है, उत्पादन लागत कम होती है, पर्यावरणीय सुरक्षा बढ़ती है और टिकाऊ, पर्यावरण–अनुकूल सब्जी उत्पादन को बढ़ावा मिलता है।

विभिन्न शोधों से यह भी स्पष्ट है कि हानिकारक और लाभकारी कीटों का प्रभाव फसल, मौसम और खेत की पारिस्थितिकी पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए धान में भूरा पौधा फुदका अधिक नाइट्रोजन, घनी फसल और अनियंत्रित कीटनाशी प्रयोग से तेजी से बढ़ सकता है, जबकि कपास और सब्जियों में सफेद मक्खी रस चूसने के साथ विषाणु रोगों का प्रसार भी करती है। *स्पडोप्टेरा लिटुरा* और *हेलिकोवर्पा आर्मीजेरा* जैसे पर्णभक्षी और फल/फली भक्षी कीट दलहनी, तिलहनी और सब्जी फसलों में प्रत्यक्ष क्षति पहुँचाते हैं। इसलिए इनके प्रबंधन में केवल छिड़काव नहीं, बल्कि निगरानी, सही समय पर निर्णय और प्राकृतिक शत्रुओं की सुरक्षा को भी शामिल करना चाहिए।

लाभकारी कीटों पर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि परागणकर्ता और प्राकृतिक शत्रु दोनों कृषि उत्पादन में अदृश्य लेकिन महत्वपूर्ण सेवा प्रदान करते हैं। परागणकर्ता फल, बीज और गुणवत्ता बढ़ाते हैं, जबकि परभक्षी और परजीवी कीट हानिकारक कीटों की संख्या कम करते हैं। इसीलिए लाभकारी कीटों को बचाने के लिए शाम के समय छिड़काव, चयनात्मक कीटनाशक, फूलदार मेड़, मिश्रित खेती और जैविक विधियों का प्रयोग अधिक उपयोगी माना जाता है।

इस प्रकार कृषि में परागणकर्ताओं की भूमिका, जैविक नियंत्रण की उपयोगिता, रासायनिक नियंत्रण की सीमाएँ और आधुनिक तकनीकों की संभावनाएँ एक–दूसरे से जुड़ी हुई हैं। अच्छे कीट जैसे मधुमक्खी, तितली, लेडीबर्ड बीटल, लेसविंग और परजीवी ततैया उत्पादन वृद्धि, जैव विविधता और पर्यावरणीय संतुलन में सहयोग करते हैं, जबकि बुरे कीट फसल हानि, रोग प्रसार और आर्थिक नुकसान का कारण बनते हैं। इसलिए टिकाऊ कृषि का उद्देश्य केवल कीटों को मारना नहीं, बल्कि हानिकारक कीटों का वैज्ञानिक प्रबंधन और लाभकारी कीटों का संरक्षण होना चाहिए। जैविक नियंत्रण, आईपीएम, पोषक–पादप प्रतिरोध, परागणकर्ता संरक्षण और आधुनिक डिजिटल तकनीकों का संतुलित उपयोग भविष्य की सुरक्षित, उत्पादक और पर्यावरण–अनुकूल कृषि प्रणाली का आधार बनेगा।

इस अंक में प्रस्तुत खाद्य उत्पादन के लिए लाभकारी और हानिकारक कीट विषयक विशेष खण्ड में आप सभी सुधी पाठकों का हार्दिक स्वागत एवं अभिनन्दन है। अपनी प्रतिक्रिया से हमें अवश्य अवगत कराने का कष्ट करेंगे।

संस्कृत उद्धरण

विद्या की महिमा

"न चोरहार्यं न च राजहार्यं
न भ्रातृभाज्यं न च भारकारी।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं
विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्"

न चोर इसे चुरा सकते हैं, न शासन इसे छीन सकता है,न भाईयों में इसका बंटवारा हो सकता है, न ही इसका भार होता है।इसका जितना उपयोग या वितरण किया जाए , उतना ही नित्य बढ़ता है। इसलिए विद्या धन सब धनों में श्रेष्ठ है।

प्रस्तुति – गणेश शंकर वाजपेयी और आलोक पांडेय

समकक्ष समीक्षित
विशेष खण्डः कृषि में कीट प्रबन्धन

कृषि

कृषि फसलों के कीटः चुनौतियाँ और टिकाऊ प्रबंधन

अमन यादव[1], अनिल पटेल[1], रुद्र प्रताप सिंह[1*]
और विनोद कुमार दुबे[2]

सार

कीट विश्व की कृषि गतिविधियों के लिए सबसे बड़ा खतरा हैं, जो अनाज, तिलहन, दलहन और बागवानी फसलों जैसी प्रमुख फसलों की उपज में भारी नुकसान करते हैं। इन कीटों के कारण फसल उत्पादकता में प्रति वर्ष 20–40 प्रतिशत की कमी आती है, जिसका खाद्य सुरक्षा, आजीविका और अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ता है। पारंपरिक रासायनिक कीटनाशकों पर आधारित पुरानी विधियों ने कीटनाशक प्रतिरोध, पर्यावरण प्रदूषण और गैर–लक्षित प्रजातियों के नाश में योगदान दिया है।

यह लेख प्रमुख फसलों में कीट समस्याओं, जलवायु परिवर्तन और पारंपरिक नियंत्रण विधियों की कमियों से उत्पन्न चुनौतियों की समीक्षा करता है। यह टिकाऊ कीट प्रबंधन पहलों की आवश्यकता पर जोर देता है, जिसमें समन्वित कीट प्रबंधन को केंद्रीय प्राथमिकता दी जानी चाहिए। समन्वित कीट प्रबंधन में जैविक नियंत्रण, पोषद–पादप प्रतिरोध, सांस्कृतिक नियंत्रण और चयनात्मक कीटनाशकों का उपयोग शामिल है। साथ ही, सटीक कृषि, रिमोट सेंसिंग और आनुवंशिक इंजीनियरिंग जैसी उभरती प्रौद्योगिकियाँ कीट जनसंख्या के प्रभावी नियंत्रण में सहायक हैं।

मुख्य शब्दः कृषि फसलें, कीट, टिकाऊ दृष्टिकोण, प्रबंधन

Abstract

The pests that pose the greatest danger to agricultural activities of the world are insects, which bring about massive losses of yields of the major crops like cereals, oilseeds, legumes, and horticultural crops. The result of food security, livelihoods, and the economy is reduced crop productivity of 20-40% per year by these pests. Pest management methods that are still being used in the traditional methods based on the use of mostly chemical pesticides have contributed to the prevalence of pesticide resistance, environmental pollution, and the destruction of the non-target population. This paper delves into the issues that have been brought about by insect pests in major crops, the cause of the pests outbreak either climate change or the weaknesses of traditional control solutions. It emphasizes the need to have sustainable pest management initiatives, where Integrated Pest Management (IPM) should be given central priority. IPM incorporates a variety of strategies, such as biologic control, host-plant resistance, cultural control, and the use of selective pesticides, which limit the impact on the environment and still ensure that agricultural productivity remains high. Also, the article presents the emerging technologies, including precision agriculture, remote sensing, and genetic engineering, which promise much to control the population of pests more effectively. By implementing these new methods, dependency on the use of chemical pesticides can be minimized, increase control of pests, and achieve environmental sustainability. Environmentally friendly pest management is essential in terms of both future food security and the preservation of the environment and human health.

Key Words: Agricultural crops, Insect Pests, Sustainable approach, Management

परिचय

वैश्विक स्तर पर फसल उत्पादकता को प्रभावित करने वाले सबसे महत्वपूर्ण जैविक तनावों में से एक कीट हैं। कीट संक्रमण से प्रतिवर्ष औसतन 20–40 प्रतिशत की उपज हानि होती है। ये कीट पौधों की पत्तियों, जड़ों, तनों, बीजों और प्रजनन अंगों पर आक्रमण कर फसल की मात्रा और गुणवत्ता को कम करते हैं। कृषि उपज हानि न केवल खाद्य सुरक्षा के लिए खतरा है, बल्कि इससे किसानों को, विशेष रूप से विकासशील क्षेत्रों में, गंभीर आर्थिक नुकसान भी होता है।

विश्व की बढ़ती जनसंख्या के साथ, जो 2050 तक लगभग 9.7 अरब तक पहुँचने का अनुमान है – खाद्य उत्पादन की माँग और बढ़ेगी। इससे कृषि प्रणालियों पर कीट समस्याओं के निरंतर खतरे से निपटते हुए उच्च

[1]एसोसियेट प्रोफेसर, (कीट विज्ञान विभाग), कृषि महाविद्यालय, [2]आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या 224229, उत्तर प्रदेश, भारत
ईमेलः rudrapsingh@nduat.org

उत्पादन बनाए रखने का दबाव बढ़ेगा। अतः कीट प्रबंधन को पारंपरिक रासायनिक नियंत्रण से आगे बढ़कर अधिक टिकाऊ तरीकों की ओर जाना होगा।

आणविक जीव विज्ञान, जीनोमिक्स और सटीक कृषि जैसे नवीन वैज्ञानिक दृष्टिकोणों का संयोजन ही कृषि उत्पादन और पर्यावरणीय स्थिरता के बीच संतुलन का मूल है। कीटों की समय पर पहचान, वास्तविक समय में उनका पता लगाने और उचित हस्तक्षेप करने की अनुमति देने वाली प्रौद्योगिकियाँ आधुनिक कृषि को अधिक संसाधन–कुशल और सटीक कीट प्रबंधन दृष्टिकोण की ओर ले जा सकती हैं। इसके अलावा, जमीनी स्तर पर सहभागी रणनीतियाँ सफल होती हैं क्योंकि किसान कीट प्रबंधन प्रक्रियाओं में निर्णय लेने में भाग लेते हैं (Conde et al. 2025)।

रासायनिक कीटनाशक दशकों से आधुनिक खेती और कीट प्रबंधन की नींव रहे हैं। हालांकि, सिंथेटिक रसायनों के उपयोग से कई कीट प्रजातियों में कीटनाशक प्रतिरोध उभरा है, जिससे इनकी प्रभावशीलता घट रही है। अत्यधिक कीटनाशक उपयोग से मिट्टी और जल प्रदूषण, गैर–लक्षित प्रजातियों (परागणकर्ताओं सहित) की हानि और मानव स्वास्थ्य जोखिम जैसे नकारात्मक पर्यावरणीय प्रभाव भी सामने आए हैं। जलवायु परिवर्तन के साथ कीट प्रजातियों की भौगोलिक सीमा, व्यवहार और जीवन–चक्र में भी बदलाव आ रहा है, जिससे कीट प्रबंधन और कठिन हो गया है (Singh and Joshi, 2025)।

इन समस्याओं के जवाब में टिकाऊ कीट प्रबंधन रणनीतियाँ लोकप्रिय हुई हैं। समन्वित कीट प्रबंधन, जैविक नियंत्रण, पोषद–पादप प्रतिरोध और पारिस्थितिक इंजीनियरिंग जैसे दृष्टिकोण रसायनों के उपयोग को कम करने का प्रयास करते हैं। ये उपाय कीट जनसंख्या को पर्यावरण–हितैषी और लागत प्रभावी तरीके से नियंत्रित करने के लिए सांस्कृतिक, जैविक और यांत्रिक विधियों का मिश्रण करते हैं (Mythili et al., 2020)।

प्रमुख फसलों के मुख्य कीट

कीट समस्याओं की गंभीरता फसल और क्षेत्र के अनुसार भिन्न होती है। नीचे प्रमुख फसलों के मुख्य कीट और उनका प्रभाव दिया गया है।

अनाज फसलें

धान

धान एशिया, अफ्रीका और अमेरिका के कुछ भागों में एक प्रमुख खाद्य फसल है। हालाँकि, इसका उत्पादन अक्सर कीटों द्वारा बाधित होता है जैसा कि तालिका 1 में दर्शाया गया है।

तालिका 1. धान के प्रमुख कीट

क्र. सं.	सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम (हिंदी लिप्यंतरण)	गण	कुल
1.	पीला तना छेदक	*स्किरपोफागा इन्सर्टुलास*	लेपिडोप्टेरा	पायरालिडी
2.	पत्ती मोड़क	*क्नाफालोक्रोसिस मेडिनालिस*	लेपिडोप्टेरा	पायरालिडी
3.	भूरा पौधा हॉपर	*निलापरवाटा लुगेन्स*	हेमिप्टेरा	डेल्फासिडी
4.	गंधी कीट	*लेप्टोकोरिसा अक्यूटा*	हेमिप्टेरा	एलीडीडे

पीला तना छेदक

क्षति की प्रकृति

लार्वा तने में छेद करता है। वानस्पतिक अवस्था में यह 'नुकसानदेह' का प्रभाव उत्पन्न करता है, जहाँ मुख्य शाखा सूख जाती है और इसे आसानी से खींचा जा सकता है। प्रजनन अवस्था में 'सफेद बाली' बनती है जिसमें बालियाँ खाली या आधी भरी होती हैं। लार्वा तने के अंदर रहता है, इसलिए फसल हानि तभी पता चलती है जब आंतरिक क्षति हो चुकी होती है।

भूरा पौधा हॉपर

क्षति की प्रकृति

अत्यधिक संक्रमण से धान के पौधे सूखते और पीले पड़ते हैं। निम्फ और वयस्क धान की जड़ों के पास से रस चूसते हैं, जिससे 'हॉपर बर्न' होता है। ये हनीड्यू भी छोड़ते हैं जिससे कालिया मोल्ड पनपती है, और धान के घासीय स्टंट तथा रैगड स्टंट रोगों के वाहक भी हैं।

टिकाऊ धान कीट प्रबंधन में चुनौतियाँ

पीले तना छेदक का प्रबंधन कठिन है क्योंकि लार्वा पौधे के ऊतकों में सुरक्षित रहता है, क्षति देर से पता चलती है और स्प्रे लक्ष्य तक नहीं पहुँचता। भूरे पौधा हॉपर के लिए सघन फसल छत्र, अत्यधिक नाइट्रोजन, बार–बार धान की खेती और व्यापक–स्पेक्ट्रम कीटनाशकों का प्रारंभिक उपयोग प्रकोप को बढ़ावा देता है। यह कीट प्रतिरोध भी विकसित करता है। इन कारणों से नियमित रासायनिक नियंत्रण अविश्वसनीय और पारिस्थितिक रूप से खतरनाक है (Garg et al. 2026)।

धान कीटों का टिकाऊ प्रबंधन

समकालिक रोपण, खेत स्वच्छता, कटाई के बाद ठूंठ नष्ट करना, रोपाई से पहले पौधों की जड़ काटकर तना छेदक के अंडे के गुच्छों को नष्ट करना, संतुलित उर्वरक उपयोग और अत्यधिक नाइट्रोजन से बचाव करें। पीले तना छेदक के लिए फेरोमोन ट्रैप से निगरानी/सामूहिक ट्रैपिंग और प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण करें। भूरे पौधा हॉपर के लिए अनावश्यक कीटनाशक छिड़काव से बचें, उचित दूरी बनाए रखें, रुक–रुककर जल निकासी करें और मकड़ियों व अन्य उपयोगी कीटों के प्राकृतिक शत्रुओं को संरक्षित करें।

गेहूँ के कीट

गेहूँ की फसलों में हानि पहुँचाने वाले कीट तालिका 2 में दिए गए हैं।

तालिका 2. गेहूँ के प्रमुख कीट

क्र. सं.	सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	गण	कुल
1.	गेहूँ माहू	*मैक्रोसिफम मिसकैंथी*	हेमिप्टेरा	एफिडिडी
2.	कट वर्म	*मिथिम्ना सेप्राटा*	लेपिडोप्टेरा	नॉक्टुइडी
3.	दीमक	*ओडोन्टोटर्मीस ओबेसस*	आइसोप्टेरा	टर्मिटिडी

गेहूँ माहू

क्षति की प्रकृति

दीमक रोपाई के तुरंत बाद से लेकर फसल की वृद्धि के बाद के चरण तक गेहूँ पर आक्रमण करती है। ये जड़ों और भूमिगत तनों को खाती हैं, जिससे पौधे मुरझाते हैं और आसानी से उखड़ जाते हैं। बाद के हमलों में क्षतिग्रस्त पौधों से सफेद या खराब भरी बालियाँ निकल सकती हैं।

दीमक

क्षति की प्रकृति

दीमक बुवाई के बाद से फसल की वृद्धि तक गेहूँ पर आक्रमण करती है। ये जड़ों और भूमिगत तनों को खाती हैं जिससे पौधे मुरझाते और आसानी से उखड़ जाते हैं। बाद के हमलों में सफेद बालियाँ या खराब भरी बालियाँ हो सकती हैं। बारानी, बलुई, सूखे खेतों में और जहाँ बिना सड़ी हुई फसल अवशेष मौजूद हों, वहाँ संक्रमण अधिक तीव्र होता है।

टिकाऊ गेहूँ कीट प्रबंधन में चुनौतियाँ

गेहूँ कीट प्रबंधन कठिन है क्योंकि प्रकोप मौसम, बुवाई समय, सिंचाई और फसल पोषण से प्रभावित होता है। माहू बहुत तेजी से बढ़ते हैं और कीटनाशक प्रतिरोध विकसित कर सकते हैं। दीमक के भूमिगत भोजन की जल्दी पहचान मुश्किल है, विशेष रूप से शुष्क भूमि की परिस्थितियों में।

गेहूँ कीटों का टिकाऊ प्रबंधन (IPM दृष्टिकोण)

समय पर बुवाई, गहरी गर्मी जुताई, फसल अवशेष नष्ट करना और केवल अच्छी तरह से सड़ी हुई FYM का उपयोग करें। उचित सिंचाई बनाए रखें क्योंकि जल तनाव से दीमक का नुकसान अधिक होता है और अत्यधिक नाइट्रोजन से बचें क्योंकि यह माहू को आकर्षित करता है। नियमित सर्वेक्षण करें। लेडीबर्ड बीटल, लेसविंग्स, सिरफिड्स और परजीव्याभों जैसे प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण एक प्रमुख टिकाऊ उपाय है।

कीट–विशिष्ट टिकाऊ प्रबंधन

माहू के लिए: नियमित जाँच और आर्थिक सीमा (प्रति तिनके 10 माहू या प्रति बाली 5) के आधार पर नियंत्रण करें। दीमक के लिए: गहरी गर्मी जुताई, अवशेष नष्ट करना, अच्छी तरह सड़े FYM, समय पर बुवाई और पर्याप्त मिट्टी नमी जैसे निवारक और सांस्कृतिक उपाय सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं।

मक्का के कीट

तालिका 3. मक्का के प्रमुख कीट

क्र. सं.	सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	गण	कुल
1.	तना छेदक	*काइलो* पार्टेलस	लेपिडोप्टेरा	पायरालिडी
2.	कान कीड़ा / कॉर्न वर्म	*हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा*	लेपिडोप्टेरा	नॉक्टुइडी
4.	मक्का शूट फ्लाई	*एथेरिगोना ओरिएंटालिस*	*डिप्टेरा*	*मस्किडी*

तना छेदक

क्षति की प्रकृति

युवा लार्वा कोमल मुड़ी हुई पत्तियों को खाते हैं और 'शॉट होल' लक्षण पैदा करते हैं। बढ़ते हुए वे तने में प्रवेश करते हैं, आंतरिक ऊतकों को खाते हैं, जिससे 'मृत हृदय' बनता है, केंद्रीय शाखा सूखती है और तने में छेद व सुरंग दिखाई देते हैं।

टिकाऊ प्रबंधन

गहरी गर्मी जुताई, मक्का–सोयाबीन, मक्का–लोबिया या मक्का–हरी मूँग जैसी अंतरफसल, तना छेदक सहनशील किस्में, मृत हृदयों की सफाई और कटाई के बाद ठूंठ साफ करना। (एनआईपीएचएम) *ट्राइकोग्रामा किलोनिस*/ 1,60,000/हेक्टेयर की 7वें और 15वें दिन रिलीज की सिफारिश करता है।

कान कीड़ा/अमेरिकन बॉलवर्म

क्षति की प्रकृति

लार्वा सिल्क, विकसित दानों और भुट्टों को खाता है। भुट्टे पर गोल छेद दिखते हैं और बाहर कणिकाकार मलमूत्र होता है। इससे दाने बनने और कान की गुणवत्ता पर सीधा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

टिकाऊ प्रबंधन

प्रकाश ट्रैप, सेक्स फेरोमोन ट्रैप (12/हेक्टेयर) और 10 दिनों के अंतराल पर न्यूक्लियर पॉलीहैड्रोसिस वायरस के 2 प्रयोग। ट्राइकोग्रामा जैसे परजीवी का संरक्षण करें और व्यापक–स्पेक्ट्रम स्प्रे से बचें।

कपास के कीट

तालिका 4. कपास के प्रमुख कीट

क्र. सं.	सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम	गण	कुल
1.	लीफहॉपर	*अम्रास्का बिगुट्टुला बिगुट्टुला*	हेमिप्टेरा	सिसाडेलिडी
2.	गुलाबी बॉलवर्म	*पेक्टिनोफोरा गॉसिपिएला*	लेपिडोप्टेरा	गेलेकिडी
3.	अमेरिकन बॉलवर्म	*हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा*	लेपिडोप्टेरा	नॉक्टुइडी
4.	सफेद मक्खी	*बेमिसिया टैबैसी*	हेमिप्टेरा	एलेयरोडिडी

अमेरिकन बॉलवर्म

क्षति की प्रकृति

लार्वा कलियों, फूलों और टिण्डों को खाता है। टिण्डों पर गोल छेद, बाहर कणिकाकार मलमूत्र और टिण्डे की आंतरिक सामग्री का भक्षण इसके सामान्य लक्षण हैं, जिससे उपज और गुणवत्ता पर सीधा नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

टिकाऊ प्रबंधन

IPM रणनीति अपनाएँ जिसमें समय पर बुवाई, खेत की सफाई, फसल अवशेष हटाना, उचित उर्वरक और अनावश्यक छिड़काव से परहेज शामिल है। फेरोमोन ट्रैप से निगरानी, प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण और *ट्राइकोग्रामा किलोनिस, चेलोनस ब्लैकबर्नी, क्राइसोपरला* तथा *न्यूक्लियर पॉलीहैड्रोसिस* वायरस से जैविक नियंत्रण करें।

गुलाबी बॉलवर्म

क्षति की प्रकृति

लार्वा फूल की कलियों और टिण्डों में प्रवेश कर अंदर खाता है। मुख्य लक्षणों में गुलाबी फूल, प्रवेश स्थान पर मलमूत्र, इंटरलॉकुलर सुरंग, दो बीजों का विकास, प्रभावित कलियों और कच्चे टिण्डों का गिरना और सुरंग बने बीजों वाला फीका रुई शामिल है।

टिकाऊ प्रबंधन

फेरोमोन ट्रैप से शुरुआती निगरानी, फसल अवशेष और संक्रमित पौधे भाग नष्ट करना, फसल चक्र, गहरी गर्मी जुताई, उचित दूरी के साथ समय पर बुवाई और संतुलित पोषण प्रबंधन पर आधारित टिकाऊ प्रबंधन। जैविक नियंत्रण और IPM के साथ ट्रैप–आधारित सीमा निर्णय व्यापक–स्पेक्ट्रम कीटनाशकों के पुनः उपयोग को रोकता है।

दलहन फसलों के कीट

तालिका 5. दलहन फसलों के प्रमुख कीट

क्र. सं.	सामान्य नाम	वैज्ञानिक नाम (हिंदी लिप्यंतरण)	गण	कुल
1.	चना फली छेदक	*हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा*	लेपिडोप्टेरा	नॉक्टुइडी
2.	फली मक्खी	*मेलानाग्रोमाइजा ओबटूसा*	डिप्टेरा	एग्रोमाइजिडी
3.	धब्बेदार फली छेदक	*मारुका टेस्ट्यूलालिस*	लेपिडोप्टेरा	पायरालिडी
4.	प्लूम मॉथ	*एक्सेलास्टिस एटोमोसा*	लेपिडोप्टेरा	प्टेरोफोरिडी

चना फली छेदक

क्षति की प्रकृति

यह अरहर का सबसे विनाशकारी फली–भक्षी कीट है। प्रारंभिक अवस्था में लार्वा पत्तियाँ खाकर पर्णपात कर सकते हैं। फूल और फली बनते समय कैटरपिलर कलियों, फूलों और फलियों पर जाता है। सामान्य लक्षण यह है कि लार्वा केवल अपना सिर फली में डालकर और शरीर बाहर रखकर बढ़ते बीजों को खाता है। क्षतिग्रस्त फलियों में गोल छेद होते हैं और बढ़ते बीज आंशिक या पूरी तरह खा लिए जाते हैं, जिससे उपज और बाजार गुणवत्ता सीधे प्रभावित होती है।

टिकाऊ प्रबंधन

टिकाऊ नियंत्रण एकीकृत कीट प्रबंधन दृष्टिकोण पर आधारित होना चाहिए। प्रत्येक 9 पंक्तियों पर 1 पंक्ति सूरजमुखी के साथ अरहर की अंतरफसल, मक्का को सीमा फसल के रूप में उपयोग करें। फेरोमोन ट्रैप से निगरानी और पक्षी बैठान से कीटभक्षी पक्षियों को आकर्षित करें। छोटे–मध्यम खेतों में बड़े लार्वा का हाथ से संग्रह, HaNPV का उपयोग, नीम–आधारित स्प्रे और प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण टिकाऊ प्रबंधन के अभिन्न अंग हैं।

फली मक्खी

क्षति की प्रकृति

हानिकारक अवस्था मैगट है। यह फली की दीवार में छेद कर अंदर बढ़ते बीज को खाता है। सामान्य लक्षणों में फली की दीवार का गहरा भूरा पपड़ीनुमा होना, सूखी फलियों में पिनहेड छेद और सिकुड़े हुए धारीदार आधे खाए गए बीज शामिल हैं। चूँकि भोजन फली के अंदर होता है और फलियाँ नहीं खोली जाती, क्षति छूट जाती है। क्षतिग्रस्त अनाज न खाने योग्य होता है और न अंकुरित होता है।

टिकाऊ प्रबंधन

शीघ्र पहचान और प्राकृतिक शत्रुओं का संरक्षण सबसे व्यावहारिक उपाय है। TNAU विशेष रूप से *Euderus lividus, Eurytoma* sp. और *Euderus agromyzae* परजीव्याभों के संरक्षण की सिफारिश करता है। ICRISAT का सुझाव है कि फली मक्खी को बड़े IPM तंत्र के हिस्से के रूप में उपचारित किया जाए जिसमें खेत निगरानी, रोकथाम–प्रथम प्रबंधन और उपयोगी कीटों की न्यूनतम हस्तक्षेप शामिल है।

संदर्भ (References)

Conde S, Catarino S, Ferreira S, Temudo MP and Monteiro F (2025). Rice pests and diseases around the world: Literature-based assessment with emphasis on Africa and Asia. Agriculture, 15(7): 667.

Singh G and Joshi NK (2025). Insect pests of wheat in north India: A comprehensive review of their bio-ecology and integrated management strategies. Agriculture, 15(19): 2067.

Garg S, Gupta D, Punetha H (2026). Comprehensive utilization of mustard seed meals: phytochemical composition, feed applications, and economic pest management strategies. European Food Research and Technology, 252(2): 56.

Mythili B, Pavan T, Singha A, Keerthika N and Ghosh SK (2020). Sustainable Management of Pests Infesting Rapeseed and Mustard Crops. Plant Science Today, 14(2): 13-34.

Kumar R, Paul D, Singh S, Meena RS, Jakhar A, Kaur J and Kumar V (2025). Integrated Insect-Pest Management in BG-II cotton after threatening appearance of Pectinophora gossypiella (Saunders). International Journal of Tropical Insect Science, 45(3): 975-988.

समकक्ष समीक्षित

कृषि

विशेष खण्डः कृषि में कीट प्रबन्धन

मधुमक्खी पालन में युवाओं की भूमिकाः स्वरोजगार, उद्यमिता विकास, जैव विविधता संरक्षण एवं टिकाऊ खेती को बढ़ावा

अनिल पटेल, रुद्र प्रताप सिंह, प्रदीप कुमार दलाल, शिवांगी माहेश्वरी, रिची अवस्थी एवं अमन यादव

सार

मधुमक्खी पालन, जो एक सदियों पुरानी प्रथा है, आज के बढ़ते पर्यावरणीय चुनौतियों जैसे परागणकर्ताओं की कमी, जलवायु परिवर्तन और जैव विविधता की हानि के बीच एक महत्वपूर्ण और स्थिर कृषि गतिविधि के रूप में उभरा है। मधुमक्खी पालन में युवाओं की भागीदारी हाल के वर्षों में बढ़ी है। मधुमक्खियाँ न केवल पर्यावरणीय देखभाल का एक व्यावहारिक अवसर प्रदान करती हैं, बल्कि यह उद्यमिता, वैज्ञानिक खोज और सामुदायिक जुड़ाव का भी एक मंच बनाती हैं। इस लेख में यह बताया गया है कि कैसे युवा इस उद्यम को स्थापित करके परागणकर्ता संरक्षण का समर्थन करते हैं, व्यावहारिक व्यवसाय के अवसर प्राप्त करते हैं और पर्यावरणीय जिम्मेदारी को बढ़ावा देते हैं। विभिन्न शैक्षिक गतिविधियाँ और मधुमक्खी पालन कार्यक्रमों पर चर्चा की गई है, जो यह दर्शाते हैं कि कैसे युवा लोग मधुमक्खी पालन, पर्यावरणीय रक्षा और उद्यमिता की अगली पीढ़ी के संरक्षक बन सकते हैं। लेख इस बात पर जोर देता है कि युवाओं को मधुमक्खी पालन का भविष्य सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक उपकरण, ज्ञान और संसाधन प्रदान किए जाएँ, ताकि खाद्य सुरक्षा, जैव विविधता संरक्षण और स्थिर कृषि में योगदान दिया जा सके।

संकेत शब्दः *मधुमक्खी पालन, युवा भागीदारी, परागण, शहद उत्पादन, मोम, पर्यावरणीय देखभाल।*

परिचय

मधुमक्खी पालन, जिसे एपीकल्चर भी कहा जाता है, एक प्राचीन और अत्यंत महत्वपूर्ण प्रथा है, जो न केवल कृषि में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, बल्कि पर्यावरणीय संतुलन और जैव विविधता को बनाए रखने में भी सहायक है। मधुमक्खियाँ परागण करने वाले सबसे प्रभावी कीड़े माने जाते हैं, और उनका पर्यावरण तथा कृषि में योगदान अतुलनीय है (Singh *et al.*, 2016)। हालांकि, जैसे–जैसे शहरीकरण, पर्यावरणीय प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और कृषि की प्रथाओं में बदलाव हो रहा है, मधुमक्खियों की संख्या में तेजी से गिरावट आई है। यह समस्या वैश्विक खाद्य सुरक्षा और पारिस्थितिकी तंत्र पर गंभीर खतरे उत्पन्न कर रही है।

मधुमक्खियाँ, जिनका मुख्य कार्य परागण करना है, कृषि उत्पादों की पैदावार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। वे अनगिनत फलों, सब्जियों, बीजों और अन्य कृषि उत्पादों के परागण में मदद करती हैं, जो मानव आहार का महत्वपूर्ण हिस्सा होते हैं। लगभग एक तिहाई वैश्विक खाद्य उत्पादन मधुमक्खियों और अन्य परागणकर्ताओं पर निर्भर करता है (Klein *et al.*, 2007)। इसके अलावा, मधुमक्खियाँ जैव विविधता को बनाए रखने में भी मदद करती हैं क्योंकि वे न केवल कृषि पौधों, बल्कि जंगली पौधों के परागण में भी योगदान करती हैं। यह परागण प्रक्रिया पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है, क्योंकि यह पौधों के विकास और बीज उत्पादन में मदद करती है, जिससे अन्य जीवों के लिए भोजन आपूर्ति सुनिश्चित होती है।

लेकिन पिछले कुछ दशकों में परागणकर्ताओं की संख्या में तेजी से गिरावट आई है। इसके कारणों में प्रमुख हैं – शहरीकरण, पारंपरिक कृषि पद्धतियों का समाप्त होना, जलवायु परिवर्तन, कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग और प्राकृतिक आवासों का नुकसान। इसके परिणामस्वरूप, मधुमक्खी पालन और अन्य परागणकर्ताओं की सुरक्षा की आवश्यकता पहले से कहीं अधिक बढ़ गई है। इस समस्या के समाधान के रूप में युवा पीढ़ी की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई है। हाल के वर्षों में मधुमक्खी पालन में युवाओं की बढ़ती भागीदारी एक सकारात्मक संकेत है। यह युवा पीढ़ी, जो पर्यावरणीय मुद्दों के प्रति अधिक जागरूक हो रही है, अब मधुमक्खी पालन को न केवल एक पारिस्थितिकीय संरक्षण के रूप में देख रही है, बल्कि इसे एक व्यावसायिक अवसर के रूप में भी देख रही है

आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या 224229, उत्तर प्रदेश, भारत
ईमेलः rudrapsingh@nduat.org

(NYBA, 2021)।

आजकल कई युवा मधुमक्खी पालन को अपने करियर विकल्प के रूप में चुन रहे हैं, क्योंकि यह न केवल पारिस्थितिकी तंत्र को बचाने में मदद करता है, बल्कि उन्हें एक स्थिर आय स्रोत भी प्रदान करता है। युवाओं का इस क्षेत्र में शामिल होना इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि यह सुनिश्चित करता है कि भविष्य में मधुमक्खी पालन के माध्यम से परागणकर्ताओं की रक्षा की जाएगी। साथ ही यह युवा पीढ़ी को पर्यावरणीय जिम्मेदारी का एहसास भी कराता है, जो आने वाली पीढ़ियों के लिए एक स्थिर और स्वस्थ जीवन सुनिश्चित करता है। मधुमक्खी पालन युवाओं को न केवल व्यावसायिक कौशल प्रदान करता है, बल्कि यह उन्हें पर्यावरण और कृषि से जुड़ी वैज्ञानिक समझ भी प्रदान करता है, जो उनके जीवन के अन्य पहलुओं में भी उपयोगी सिद्ध होती है (Sharma *et al.*, 2021)।

इसके अलावा, मधुमक्खी पालन के क्षेत्र में युवाओं की भागीदारी से समाज में जागरूकता बढ़ती है और स्थिर कृषि प्रथाओं को बढ़ावा मिलता है। इस लेख का उद्देश्य यही है कि हम समझें कि कैसे युवा पीढ़ी का मधुमक्खी पालन में शामिल होना पर्यावरणीय संरक्षण और कृषि स्थिरता के लिए एक शक्तिशाली कदम साबित हो सकता है। इसके साथ ही यह युवा पीढ़ी के लिए एक व्यावसायिक और सामाजिक दृष्टिकोण से लाभ का अवसर भी प्रदान करता है। युवाओं के लिए मधुमक्खी पालन एक ऐसे अवसर के रूप में सामने आया है, जो उन्हें पारिस्थितिकीय संरक्षण के साथ–साथ आर्थिक स्वतंत्रता भी प्रदान करता है।

कृषि और पारिस्थितिकी प्रणाली की स्थिरता में मधुमक्खियों का महत्व

मधुमक्खियाँ परागण के लिए आवश्यक हैं। यह एक प्रक्रिया है जो वैश्विक खाद्य उत्पादन के लगभग एक तिहाई हिस्से को प्रभावित करती है। परागण करने वाले जीव, विशेष रूप से मधुमक्खियाँ, कई फसलों के प्रजनन में अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, जिनमें फल, सब्जियाँ और मेवे शामिल हैं, जो मानव आहार का एक बड़ा हिस्सा बनते हैं। तेजी से शहरीकरण और आवासीय क्षेत्रों के नुकसान के कारण मधुमक्खियाँ अब जनसंख्या में कमी के खतरे का सामना कर रही हैं, जिससे खाद्य सुरक्षा और पारिस्थितिकी तंत्र के स्वास्थ्य पर चिंता बढ़ रही है। इन महत्वपूर्ण परागणकर्ताओं की हानि कृषि के लिए गंभीर परिणाम ला सकती है, जो खाद्य उत्पादन और जैव विविधता दोनों को खतरे में डाल सकती है।

मधुमक्खी की आबादी में चिंताजनक गिरावट के साथ इन आवश्यक कीड़ों की सुरक्षा और समर्थन के लिए बढ़ती हुई पहल देखी जा रही है। युवा पीढ़ी को मधुमक्खी पालन में संलग्न करना एक दोहरा लाभ प्रदान करता है। यह युवाओं को परागणकर्ता संरक्षण में योगदान देने का एक व्यावहारिक अवसर देता है और उन्हें पर्यावरणीय देखभाल के लिए आवश्यक कौशल प्रदान करता है।

मधुमक्खी पालन में युवाओं की भागीदारीः एक बढ़ता हुआ आंदोलन

हाल के वर्षों में मधुमक्खी पालन में युवाओं की रुचि में एक स्पष्ट वृद्धि देखी गई है। इस बढ़ती हुई प्रवृत्ति के पीछे कई कारण हैं, जैसे बढ़ती पर्यावरणीय जागरूकता, सतत कृषि में रुचि और शहद तथा मोम उत्पादन के माध्यम से आर्थिक अवसरों की संभावना। नेशनल यंग बीकीपर एसोसिएशन के अनुसार, मधुमक्खी पालन में युवाओं की भागीदारी परागणकर्ता स्वास्थ्य और कृषि स्थिरता के भविष्य के लिए आवश्यक है (NYBA, 2021)।

युवा पीढ़ी पर्यावरणीय चुनौतियों को पहचानती है और यह समझती है कि जलवायु परिवर्तन, आवास का नष्ट होना और कीटनाशकों का अत्यधिक उपयोग परागणकर्ताओं के लिए महत्वपूर्ण खतरे हैं। स्वस्थ मधुमक्खी छत्ता बनाए रखते हुए युवा मधुमक्खी पालक सीधे तौर पर मधुमक्खी की आबादी के संरक्षण में योगदान कर सकते हैं, स्थानीय पारिस्थितिक प्रणालियों के स्वास्थ्य में सुधार कर सकते हैं और खाद्य फसलों की स्थिरता सुनिश्चित कर सकते हैं।

पर्यावरणीय उद्देश्यों के अलावा, मधुमक्खी पालन युवाओं के लिए व्यावहारिक लाभ भी प्रदान करता है। यह मधुमक्खियों के जटिल व्यवहार, परागण की जीवविज्ञान और मधुमक्खी छत्ता प्रबंधन की जटिलताओं के बारे में सीखने का एक अवसर है। एक मधुमक्खी छत्ता का प्रबंधन करने में तकनीकी ज्ञान, विवरण पर ध्यान और धैर्य की आवश्यकता होती है, जो जीवन के कई अन्य क्षेत्रों में उपयोगी होते हैं। इसके अतिरिक्त, मधुमक्खी पालन युवाओं को एक स्थिर व्यवसाय मॉडल बनाने की संभावना भी प्रदान करता है (Lomayani, 2021)। शहद उत्पादन, साथ ही मोम और अन्य मधुमक्खी संबंधित उत्पादों की बिक्री, युवा उद्यमिता के लिए एक व्यवहार्य मार्ग प्रस्तुत करती है।

युवाओं के लिए मधुमक्खी पालन कार्यक्रम और पहल

मधुमक्खी पालन में युवाओं की भागीदारी के महत्व को पहचानते हुए कई संगठन, स्कूल और सामुदायिक समूह कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं, ताकि युवा इस कार्यक्रम में शामिल हो सकें। ये कार्यक्रम युवाओं को मधुमक्खी पालन के बारे में विस्तृत शिक्षा प्रदान

करने का लक्ष्य रखते हैं, जो मधुमक्खी गृह प्रबंधन के मूल सिद्धांतों से लेकर उन्नत मधुमक्खी पालन विधाओं तक होती है। ऐसे प्रयासों में अक्सर कार्यशालाएँ, ग्रीष्मकालीन शिविर और स्थानीय मार्गदर्शक कार्यक्रम शामिल होते हैं, जो युवा मधुमक्खी पालकों को अनुभवी लोगों से संपर्क कराते हैं।

उदाहरण के लिए, नेशनल हनी बोर्ड की पहल ने युवाओं को मधुमक्खियों के महत्व और मधुमक्खी पालन की मूल बातें सिखाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन कार्यक्रमों में आमतौर पर हाइव प्रबंधन, मधुमक्खी पालन सुरक्षा और परागण के पीछे के विज्ञान पर व्यावहारिक पाठ्यक्रम शामिल होते हैं। अमेरिकन बीकीपिंग फेडरेशन के अनुसार, जिन युवाओं ने इन कार्यक्रमों से शुरुआत की, वे अक्सर मधुमक्खी पालन समुदाय के सक्रिय सदस्य बन जाते हैं और अपनी मधुमक्खी छत्ता का विस्तार करके एक सफल, आय सृजन वाले व्यवसाय का निर्माण करते हैं।

मधुमक्खी पालन में युवा भागीदारी के लाभ

1. पर्यावरणीय देखभाल को बढ़ावा देना

मधुमक्खी पालन में युवाओं की भागीदारी से पर्यावरणीय जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा मिलता है। मधुमक्खियों के साथ अपने कार्य के माध्यम से युवा पारिस्थितिकी प्रणालियों में मौजूद जटिल रिश्तों को समझते हैं। वे यह सीखते हैं कि परागणकर्ताओं की खाद्य उत्पादन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है और उनका कम होना जैव विविधता तथा कृषि उत्पादन को कैसे प्रभावित कर सकता है। परिणामस्वरूप, युवा मधुमक्खी पालक अक्सर पर्यावरणीय रक्षा में सक्रिय हो जाते हैं और परागणकर्ताओं की रक्षा के लिए समर्थन करते हैं।

2. उद्यमिता को बढ़ावा देना

मधुमक्खी पालन युवाओं के लिए एक उद्यमिता अवसर प्रस्तुत करता है। चाहे शहद बेचना हो, मोम बेचना हो या परागण सेवाएँ प्रदान करनी हों, युवा अपने मधुमक्खी पालन कार्यों से आय उत्पन्न कर सकते हैं। स्थानीय शहद और मधुमक्खी संबंधित उत्पादों के लिए बाजार बढ़ रहा है, क्योंकि उपभोक्ता स्थिर और स्थानीय रूप से प्राप्त वस्तुओं में रुचि रखते हैं (Singh *et al.*, 2018)। जैसे–जैसे युवा हाइव प्रबंधन में अनुभव प्राप्त करते हैं, वे अपने व्यवसाय का विस्तार कर सकते हैं और एक लाभकारी व्यवसाय विकसित कर सकते हैं। कृषि और जैविक विज्ञान के अंतरराष्ट्रीय जर्नल में एक अध्ययन के अनुसार, मधुमक्खी पालन युवा उद्यमियों के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में एक स्थिर आय स्रोत प्रदान करता है, जो स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को समर्थन प्रदान करता है।

3. समुदाय में जुड़ाव बनाना

मधुमक्खी पालन आपसी संबंधों को भी बढ़ाता है। स्थानीय किसानों, कृषि संगठनों और पर्यावरणीय समूहों के साथ काम करके युवा मधुमक्खी पालक परागणकर्ता स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के व्यापक प्रयासों में योगदान करते हैं। कई युवा मधुमक्खी पालन कार्यक्रम सामुदायिक आउटरीच को प्रोत्साहित करते हैं, जहाँ युवा दूसरों को मधुमक्खियों और स्थिर प्रथाओं के महत्व के बारे में शिक्षित कर सकते हैं (Abaci *et al.*, 2026)। यह समुदाय की भावना, सहयोग और सामूहिक कार्यवाही को बढ़ावा देती है, ताकि परागणकर्ताओं को होने वाली चुनौतियों का समाधान किया जा सके।

4. वैज्ञानिक जुड़ाव और नवाचार

मधुमक्खी पालन युवाओं को वैज्ञानिक जाँच में भाग लेने के लिए प्रेरित करता है। हाइव का प्रबंधन करने की प्रक्रिया में निरंतर अवलोकन और समस्या–समाधान की आवश्यकता होती है। मधुमक्खी व्यवहार को समझने से लेकर हाइव के व्यवहार का अध्ययन करने तक, युवा मधुमक्खी पालक महत्वपूर्ण वैज्ञानिक अवधारणाओं को सीखते हैं, जो उनके लिए कीटविज्ञान या पर्यावरणीय विज्ञान में आगे शोध करने के लिए प्रेरणा का स्रोत बन सकते हैं।

युवा मधुमक्खी पालकों के लिए चुनौतियाँ और समाधान

मधुमक्खी पालन के कई लाभ होने के बावजूद युवाओं को शुरुआत में चुनौतियों का सामना करना पड़ सकता है। एक प्रमुख समस्या यह है कि मधुमक्खी पालन उपकरणों की प्रारंभिक लागत, जिसमें मधुमक्खी गृह, सुरक्षात्मक सामग्री और उपकरण शामिल हैं, काफी अधिक हो सकती है। इसे कम करने के लिए कई संगठन युवा मधुमक्खी पालकों के लिए अनुदान, छूट प्राप्त उपकरण या वित्तीय सहायता प्रदान करते हैं (Christmann, 2019)। अनुभवी मधुमक्खी पालकों से मार्गदर्शन भी एक महत्वपूर्ण तत्व है, जो युवाओं को चुनौतियों को पार करने में मदद करता है।

निष्कर्ष

मधुमक्खी पालन न केवल एक प्राचीन और सम्माननीय प्रथा है, बल्कि यह आज के पर्यावरणीय संकटों का समाधान भी प्रदान करता है। परागणकर्ताओं की घटती संख्या और अन्य पर्यावरणीय समस्याओं के बीच मधुमक्खियों का संरक्षण अत्यंत महत्वपूर्ण हो गया है। युवाओं की भागीदारी इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है, जो न केवल परागणकर्ताओं की रक्षा करता है, बल्कि यह युवाओं को एक स्थिर और लाभकारी व्यवसाय का अवसर भी प्रदान करता है। शहद

उत्पादन और मधुमक्खी पालन से जुड़ी अन्य गतिविधियाँ युवाओं को उद्यमिता की दिशा में मार्गदर्शन देती हैं, साथ ही उन्हें पर्यावरणीय देखभाल और विज्ञान में गहरी समझ विकसित करने का अवसर मिलता है। मधुमक्खी पालन में युवाओं को संलग्न करने के लिए विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों और पहलों का महत्व है, जो उन्हें आवश्यक कौशल और ज्ञान प्रदान करती हैं। यह सुनिश्चित करता है कि युवा न केवल मधुमक्खी पालन के बारे में समझ हासिल करें, बल्कि इसके जरिए स्थानीय और वैश्विक स्तर पर पर्यावरणीय परिवर्तन की दिशा में भी योगदान दे सकें।

अंत में यह कहा जा सकता है कि मधुमक्खी पालन का भविष्य युवाओं के हाथों में है। यदि उन्हें सही उपकरण, ज्ञान और संसाधन मिलते हैं, तो वे इस विधा को न केवल आगे बढ़ा सकते हैं, बल्कि पर्यावरणीय स्थिरता और कृषि विकास में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। यह समय है कि हम युवाओं को प्रोत्साहित करें और उन्हें इस क्षेत्र में अधिक अवसर तथा समर्थन प्रदान करें, ताकि वे हमारे पारिस्थितिकी तंत्र और खाद्य सुरक्षा के भविष्य के संरक्षक बन सकें।

References

Singh, G., Tiwari, D., & Yadav, S. P. (2016). Income enhancement and employment generation through apiculture enterprise for rural youth in Punjab. *Age*, *20*(30), 06-20.

Singh, B., Singh, S., & Batra, A. (2018). Socio-economic status of the people adopting beekeeping as an entrepreneurship. *International Journal Current Microbiology and Applied Science*, *7*(07), 143-149.

Klein, A. M., Vaissière, B. E., Cane, J. H., Steffan-Dewenter, I., Cunningham, S. A., Kremen, C., & Tscharntke, T. (2007). Importance of pollinators in changing landscapes for world crops. *Proceedings of the royal society B: biological sciences*, *274*(1608), 303-313.

National Young Beekeeper's Association (NYBA). (2021). *The role of youth in beekeeping*. NYBA.

Christmann, S. (2019). Do we realize the full impact of pollinator loss on other ecosystem services and the challenges for any restoration in terrestrial areas. *Restoration Ecology*, *27*(4), 720-725.

Abaci, N. I., Abaci, S. H., Biyik, S., & Cankaya, N. (2026). Effectiveness of adult beekeeping training program: A case study in Türkiye. *Heliyon*, *12*(4).

Lomayani, A. E. (2021). *Assessment of the Impediments for Tackling food Insecurity through Beekeeping in the Ngorongoro Conservation Area* (Doctoral dissertation, The Open University of Tanzania).

Sharma, A., & Hajam, Y. A. (2021). Honeybees and Honey Enterprise Boon to Farmers and Unemployed Rural Youth for Socio-Economic Development. In *Honey* (pp. 139-156). CRC Press.

❖ ❖ ❖

हम भोजन और पोषण की तो चर्चा करते हैं, पर अक्सर यह समझने का प्रयास नहीं करते कि हमारे शरीर के इन अदृश्य कर्मयोगियों–एंजाइमों को क्या प्रिय है और उनकी सक्रियता किन कारकों पर निर्भर करती है। आइए, इन सूक्ष्म जैविक उत्प्रेरकों की अद्भुत दुनिया को समझने और यह जानने का प्रयास करें कि स्वस्थ एवं सक्रिय एंजाइम किस प्रकार स्वस्थ जीवन की नींव रखते हैं।

Agriculture

Peer Reviewed
Special Section: Insect Pest Management

Role of Pollinators in Agro-Ecosystem

Divyashree P[1], Richi Awasthi[1], Rudra Pratap Singh[1] and Ambethgar V[2]

Abstract

Pollination is a critical ecosystem service that facilitates the reproductive success of angiosperms and underpins the stability of global sustainable agricultural systems. In the Indian subcontinent, a substantial proportion of agricultural output relies on insect-mediated pollination to optimize both qualitative and quantitative yield parameters. This study examines the diversity and ecological significance of pollinator communities, with particular focus on their contributions to bottle gourd, cashew, and pigeon pea ecosystems. Diverse taxa from orders such as Hymenoptera (Apis mellifera), Coleoptera, Lepidoptera, and Hemiptera constitute the primary pollinator guild, with specific species exhibiting dominance in particular crop architectures. Beyond mere fruit set enhancement, these vectors promote genetic heterozygosity through cross-pollination, thereby increasing crop resilience. Advanced precision techniques, such as entomovectoring, further integrate biological agents into integrated pest and disease management. Despite their economic value—estimated globally between "US$235 and US$577 billion" pollinators face anthropogenic stressors including indiscriminate pesticide application, habitat fragmentation, and anthropogenic climate change. Consequently, implementing robust conservation frameworks is imperative to safeguard global food security.

Keywords: Pollination, insect pollinators, Apis mellifera, Entomovectoring, conservation strategies.

1. Introduction

Pollination is a fundamental ecosystem service essential to both floral biodiversity and anthropogenic food security. As a critical driver of agricultural productivity, biotic pollination directly influences the reproductive success of nearly 75% of global food crops, including essential fruits, vegetables, and oilseeds (David & Ramamurthy, 2017), The absence of these biological vectors ranging from diverse insect taxa to avian and mammalian species would precipitate a precipitous decline in crop yields, undermining global nutritional stability and ecosystem continuity. The mechanistic basis of this interaction involves complex co-evolutionary strategies, such as the production of floral nectar to recruit specialized vectors. During foraging, pollen adheres to the pollinator's anatomy, facilitating gamete transfer and ensuring effective fertilization across diverse botanical landscapes. In the Indian context, the reliance on insect-mediated pollination is particularly pronounced, with approximately 80% of crop species necessitating animal vectors for optimal yield. Empirical evidence from Coimbatore, Tamil Nadu, underscores this economic significance; studies have demonstrated that honey bee activity can enhance –cotton yield by 23.53% (David & Ramamurthy, 2017), validating the substantial role of these organisms in stabilizing agricultural economies.

Pollinators are insects (bees, butterflies, moths, flies and beetles), bats and birds.

Fig. 1 : Honeybee pollination in sunflower; Source : United States Geological Survey.

Pollination Mechanisms and Vector Diversity

Mechanisms of Gamete Transfer

Pollination is defined as the physiological transfer of pollen grains from the microsporangium (anther) to the receptive stigma, a critical precursor to syngamy and

[1]Acharya Narendra Deva University of Agriculture & Technology, Department of Entomology, Kumarganj-224 229, Ayodhya, Uttar Pradesh, India.
[2]Tamil Nadu Agricultural University, JSA College of Agriculture and Technology, Avatti-606 108, Cuddalore District, Tamil Nadu, India.
*Corresponding author email : rudrapsingh.doc@gmail.com

subsequent seed set. This process is categorized into two primary modes: autogamy (self-pollination) and allogamy (cross-pollination) (Ambethgar, 2002). While autogamy ensures reproductive assurance in the absence of external vectors, allogamy facilitates inter-individual genetic recombination, thereby enhancing the evolutionary fitness and adaptive plasticity of the population. Although autogamy may occur autonomously, allogamy typically necessitates abiotic (anemophily, hydrophily) or biotic mediated transport.

Taxonomic Classification of Biotic Vectors

Biotic pollination is driven by a diverse assembly of faunal guilds, which can be categorized based on their functional roles:

- **Entomophily (Insect Vectors):** This represents the most significant pollination guild. Key taxa include Hymenoptera (e.g., *Apis* spp., *Bombus* spp.), Lepidoptera (butterflies and moths), Diptera (syrphid flies), and Coleoptera (beetles). These insects exhibit high foraging fidelity, often driven by floral rewards such as nectar and pollen.
- **Ornithophily (Avian Vectors):** Specialized nectarivorous birds, including Trochilidae (hummingbirds) and Nectariniidae (sunbirds), facilitate pollination in plants with specific tubular floral architectures.
- **Chiropterophily (Mammalian Vectors):** Specifically in tropical and arid regions, megachiropteran and microchiropteran bats serve as primary vectors for nocturnally blooming species.

The recruitment of these vectors is mediated by complex chemical and visual signaling, where floral volatiles and pigmentation act as attractants, ensuring the mechanical adhesion and subsequent transfer of pollen grains during foraging bouts.

Diversity and Impact of Pollinators in Indian Agro-ecosystems

Recent studies across India underscore the critical role of diverse insect taxa in enhancing crop productivity. In cucurbitaceous systems, Manju *et al.* (2022) identified nine insect pollinator species visiting bottle gourd (*Lagenaria siceraria*), spanning the orders Lepidoptera (3 species), Hymenoptera (2), Coleoptera (2), and Hemiptera (1). While taxonomic diversity was broad, hymenopterans specifically honey bees emerged as the most frequent visitors, significantly influencing fruit yield.

The dependency on specific hymenopterans is further evidenced in horticultural crops; Suresh *et al.* (2024) highlighted *Apis cerana indica* as the primary driver for successful fruit set in cashew plantations. Similarly, investigation into floral visitors by Padhy et al. (2024) revealed a Hymenoptera-dominant assemblage of seven species, where the solitary bee *Megachile lanata* was identified as the most prevalent pollinator throughout the flowering phenophase. Collectively, these findings emphasize that while generalist pollinators support ecosystem stability, specific dominant species often dictate the reproductive success of Indian crops.

The Critical Interdependence of Pollinators and Global Agricultural Systems

Pollinators serve as essential biotic agents in agricultural ecosystems, facilitating the gametic fertilization required for fruit and seed development.

Fig. 2: Insect Pollination; Source : Nature and Ecology – Femilab.

Fig. 3: Bat pollination; Source : The National Wildlife Federation

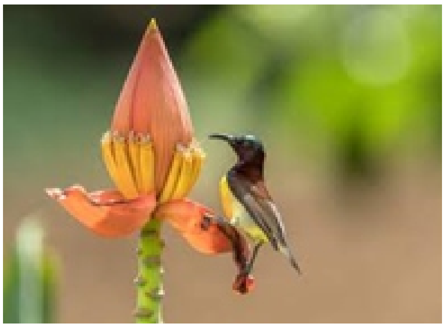

Fig. 4: Bird pollination; Source : Roundglass Sustain

Beyond basic reproduction, pollinator activity is a primary determinant of both quantitative yield and qualitative attributes such as uniformity, shelf life, and nutrient density in diverse crops including fruits, vegetables, and oilseeds (Sundararaju, 2003). By promoting cross-pollination, these organisms facilitate genetic recombination, thereby enhancing the evolutionary adaptability and resilience of crop populations to shifting environmental stressors. Economically, pollination services represent a vital ecosystem input that underpins global food security and maximizes farmer profitability by mitigating pollination deficits. Furthermore, highly specialized mutualisms, such as the obligate relationship between Agaonidae (fig wasps) and *Ficus* species, underscore the evolutionary complexity and indispensability of specific pollinator taxa for plant biodiversity.

Fig. 5: Fig wasp; Source : Fig Web

Advanced Ecosystem Services and Conservation Paradigms of Pollinators

Entomovectoring: A Novel Biocontrol Frontier Beyond traditional reproductive services, pollinators are increasingly utilized in entomovectoring, a precision agriculture technique where insects function as biological delivery systems for beneficial microorganisms. While foraging, specific taxa most notably Apis mellifera, Bombus spp., and Osmia spp. transport microbial control agents (fungal, bacterial, or viral formulations) directly to floral targets. This dual-purpose mechanism facilitates simultaneous pollination and targeted plant disease management, optimizing crop health through minimized chemical intervention (Deva Dharshini *et al.*, 2025).

Socio-Economic Valuation

The economic footprint of animal-mediated pollination is profound, supporting approximately 51% of global crop varieties. In the Indian context, pollinator-dependent agriculture constitutes a critical segment of the national agrarian output (Chaudhary & Chand, 2017). Regional assessments, such as those in Punjab, demonstrate that insect-mediated pollination significantly augments both quantitative yield and qualitative market value, directly correlating with enhanced net economic returns for smallholder farmers (Ranguwal, 2023).

Anthropogenic Drivers of Decline

Global pollinator assemblages are currently threatened by a synergy of anthropogenic stressors. The intensive application of broad-spectrum pesticides and insecticides remains a primary driver of mortality and sub-lethal impairment. Furthermore, habitat fragmentation driven by urbanization and agricultural intensification depletes vital nesting substrates and floral resources. These pressures are exacerbated by climate change, which induces phenological asynchrony between flowering intervals and pollinator activity cycles, destabilizing established plant-pollinator networks (Thakur, 2023).

Conservation and Mitigation Strategies

Reversing population declines necessitates a multi-scalar approach to conservation. Protecting core natural habitats (forests, grasslands, and wetlands) is foundational to maintaining baseline biodiversity. Strategic interventions, including the restoration of degraded corridors and the cultivation of nectar-rich floral strips, provide essential forage. Transitioning toward sustainable paradigms such as Integrated Pest and Pollinator Management (IPPM) and organic farming mitigates chemical exposure. Additionally, the integration of "pollinator-friendly" infrastructure within urban and peri-urban landscapes is vital for long-term population resilience (Ollerton, 2017).

Conclusion

Pollinators represent a cornerstone of agricultural productivity, genetic diversity, and ecosystem stability. Their role has evolved from basic reproductive facilitators to sophisticated vectors for biological control, making them indispensable to global food security. Given the accelerating threats from human activity, immediate evidence-based conservation strategies are imperative. Ensuring the persistence of diverse pollinator communities is not merely an environmental priority but a prerequisite for sustainable agricultural intensification and global economic stability.

References

Ambethgar, V. (2002). Insect visitors of cashew inflorescence in north-eastern zone of Tamil Nadu, India. Progressive Horticulture, 34:223-229

Chaudhary, O. P. & Chand, R. (2017). Economic benefits of animal pollination to Indian agriculture. Indian Journal of Agricultural Sciences, 87(9), 1117-1138.

David, B. V., & Ramamurthy, V. V. (2017). Elements of Economic Entomology (8th ed.). Brillion Publishing, New Delhi, India.

Deva Dharshini, V., Srinivasan, M. R., Saminathan, V. R., Murugan, M., Angappan, K., Kokiladevi, E.,& Premika, R. (2026). Entomovectoring: a green technology for crop protection. Journal of Plant Diseases and Protection, 1333(1), 12.

Manju, R., Srinivasan, M. R., Ganapathy, N., Mohankumar, S., & Geethanjali, S. (2022). Plant-pollinator interaction, pollinator diversity and relative abundance in bottle gourd (*Lageneria siceraria*) in Coimbatore.

Ollerton, J. (2017). Pollinator diversity: distribution, ecological function, and conservation. Annual Review Of Ecology, Evolution, and Systematics, 48, 353-376. (Ollerton, 2017)

Padhy, D., Satapathy, C. R., Borkataki, S., Shankar, T., & Ray, S. (2024). Diversity and Relative Abundance of Insect Pollinators on Pigeon Pea (Cajanus cajan L.) in Gajapati District of Odisha. Legume Research: An International Journal, 47(10).

Ranguwal, S. (2023). Economic benefits of animal pollination to Punjab agriculture. Journal of Agriculture and Ecology, 17, 85-89.

Sundararaju, D. (2003). Occurrence of bee fauna and extent of pollination in insecticide sprayed ecosystem of cashew. Journal of Palynology, 39 : 121-135.

Suresh, K., Deepika, N., Usha Rani, B., & Premika, R. (2024). Diversity and Abundance of Insect Pollinators In A Cashew Agroecosystem of Tamil Nadu. Applied Ecology & Environmental Research, 22(6).

Thakur, A. K. (2023). Major Threats on the Insect Pollinators in India.

हरियाणवी गीत

बेसुरे माणस

मंगतराम शास्त्री 'खड़तल'

झूठ कै ब्योपार म्हं जुटे रे निरे माणस।
बेबसी कै जाळ म्हं फंसरे खरे माणस।।
छोड़ दी हमनै भि करणी बंदगी क्यूं के
आप खुद भगवान बण बैठ्ठे बुरे माणस।
बात न्या की करणिये थोड़े बचे इब तो
चौधरी बण रे घणे ठाईगिरे माणस।
ढंग रिश्वत का नया इब तो कमीशन सै
दफ्तरां की इस चलाक्की म्हं घिरे माणस।
धर्म–धरती–धन–सियासत–घिण–घमंड–औरत
किस नै बेरा इनपै कितने कटमरे माणस।
देण कुदरत की हवा–पाणी–जमीं–जंगळ
इन पे कब्जा करण लग रे घणखरे माणस।

जोर तानाशाह का जित भी हुया जग म्हं
उस जगांह् सच कहण तै जाब्बक डरे माणस।
भोत से रुजगार बिन,टोट्टै–बिमारी म्हं
आदमी की जून म्हं सैं अधमरे माणस।
आण दुज्जै की भकाई म्हं घणें न्यूंएं
प्यार म्हं तकरार करलें सिरफिरे माणस।
थी कदे इज्जत गुहाण्डां तक भि जिनकी वें
इब जियादातर उसुल्लां तै गिरे माणस।
ताल–सुर–लय–साज और अभ्यास बिन गा कै
किरकिरा कर दें मजा यें बेसुरे माणस।
तर्कसम्मत बात जिननै भी करी 'खड़तल'
फण्डियां की आंख म्हं वें रड़करे माणस।

शास्त्री भवन, नया जवाहर नगर, चौड़ी गली, नजदीक जाइट इंजीनियरिंग कालेज, सफीदो रोड, जींद
ईमेलः mangatshastri@gmail.com

Agriculture

Peer Reviewed
Special Section: Insect Pest Management

From Chemical Control to Biological Solutions Evolving Paradigms in Pest Management Research

Shiv Kumar Sharma*, Pankaj Kumar, Pradeep K. Dalal and S.B. Singh**

Abstract

Agricultural entomology has undergone a fundamental transformation over the past century, shifting from near-exclusive reliance on synthetic chemical pesticides toward a more nuanced, ecologically informed philosophy of pest management. This article traces that intellectual and practical journey, examining the historical ascendancy of chemical control, the ecological and toxicological crises it precipitated, and the subsequent emergence of biological control agents and Integrated Pest Management (IPM) as dominant paradigms. Key mechanisms of biological control are predation, parasitism, and microbial antagonism, while reviewing alongside the ecological principles underpinning their effectiveness. The role of chemical control within modern IPM frameworks is critically evaluated, distinguishing between broad-spectrum and selective chemistries. The article concludes by discussing challenges confronting contemporary pest management research, including insecticide resistance, climate-mediated pest dynamics, and the promise of precision agriculture tools.

Keywords: Agricultural Entomology, Biological Control, Chemical Pesticides, Integrated Pest Management, Natural Enemies, Insecticide Resistance, Sustainable Agriculture

1. Introduction

Insects are far more common than most people realize, and the vast majority of them actually work in humanity's favor. They fertilize our crops through pollination, decompose organic waste, and naturally control the very pests that threaten our food supply. Yet a small but destructive minority of insect species inflicts staggering losses on agriculture, wiping out an estimated 20 to 40 percent of the world's crop production annually, a challenge that has kept farmers, researchers, and governments searching for solutions across generations.

From the late twentieth century, it seemed as though humanity was finally winning this ancient battle. The introduction of DDT in the 1940s was nothing less than a turning point in agricultural history. Here was a single chemical capable of eliminating almost any insect threat rapidly, affordably, and with minimal effort. Farmers welcomed synthetic pesticides as a long- awaited breakthrough, and fields that had once been ravaged by relentless pest invasions began producing harvests like never before. For an entire generation of those who worked the land, it appeared that science had done the unthinkable. It had outsmarted nature itself.

But nature refused to surrender so easily. Over time, pests began adapting and building resistance to the very chemicals designed to destroy them. Worse still, the beneficial insects that had long served as nature's own pest controllers were being wiped out alongside the intended targets. Bee populations collapsed at alarming rates. Toxic chemicals seeped into rivers, buried themselves in soil, and worked their way up through entire food chains. It was Rachel Carson's groundbreaking 1962 book, Silent Spring, that finally dragged these devastating consequences into the public eye and ignited a wave of global reflection.

That reflection has never truly stopped. Over the decades that followed, researchers began developing a far more thoughtful and refined approach, one that chose to work alongside natural ecological processes rather than bulldoze through them. This article traces that remarkable journey in full. It begins in an era when synthetic chemicals ruled agriculture without question,

**Department of Entomology, **Department of Agronomy*
Acharya Narendra Deva University of Agriculture and Technology, Ayodhya
**Corresponding author email: Kalshiv555@gmail.com*

moves through the quiet but powerful revolution of biological pest control, and arrives at the sophisticated, ecologically grounded philosophy known as Integrated Pest Management. This modern approach draws on the strengths of both science and nature, charting a path toward a future where farming can be both productive and sustainable

2. The Era of Chemical Control: Promise and Peril

2.1 The Chemical Revolution in Agriculture

When synthetic pesticides made their entrance in the mid-twentieth century, they permanently transformed the world of farming. DDT led the charge, celebrated for being affordable, highly effective, and believed at the time to pose little risk to human health. It quickly paved the way for an entire family of chemical compounds, including organochlorines, organophosphates, carbamates, and later pyrethroids and neonicotinoids. The momentum was extraordinary. By the year 2000, global pesticide use had skyrocketed to more than fifteen times the levels recorded back in 1950.

These chemicals worked by attacking the insect nervous system by disrupting the signals that control movement, feeding, and breathing. Table 1 gives an overview of the main groups and how they work.

2.2 When Things Started "Going Wrong"

The problems with heavy pesticide use weren't immediately obvious but they built up fast. Four major issues emerged over time:

- **Pest Rebounds:** When pesticides killed off the insects that naturally hunted pests, those pests were free to explode in number. A pest that was a minor nuisance before spraying could become a major outbreak within weeks and scientists call this 'pest resurgence'.
- **Pollution and Wildlife Damage:** Chemicals like DDT didn't break down quickly. They built up in the food chain and it is also referred to as Biomagnification, which means reaching dangerous concentrations of poisonous substances in an organism.
- **Harm to Bees and Pollinators:** Neonicotinoid insecticides absorbed into plant pollen and nectar were found to impair bees' navigation, memory, and ability to raise healthy colonies even at low doses, contributing to widespread pollinator decline.
- **Resistance:** More than 600 insect species are now resistant to at least one insecticide. Some pests, like the diamondback moth (*Plutella xylostella*), are resistant to almost every chemical class we have.

2.3 The Regulatory Turning Point

As the true scale of the damage became impossible to ignore, governments around the world could no longer stand on the sidelines. The United States took one of the earliest and boldest steps by banning DDT in

Table 1: The main groups of synthetic insecticides, how they work, and what pests they target.

Chemical Class	How It Works	Common Examples	Main Targets
Organochlorines	Disrupts nerve signals	DDT, lindane, dieldrin	Very broad & most insects
Organophosphates	Blocks nerve enzyme (AChE)	Chlorpyrifos, malathion, dimethoate	Chewing & sucking pests
Carbamates	Blocks nerve enzyme (AChE)	Carbaryl, carbofuran, methomyl	Beetles, caterpillars
Pyrethroids	Disrupts nerve signals	Cypermethrin, deltamethrin	Very broad & most insects
Neonicotinoids	Overactivates nerve receptors	Imidacloprid, clothianidin	Sap-sucking & soil pests
Diamides	Overactivates muscle receptors	Chlorantraniliprole	Caterpillars and larvae
Spinosyns	Attacks nerve & muscle receptors	Spinosad	Thrips, caterpillars

1972, and most other developed nations soon followed suit. Then came the Stockholm Convention of 2001, which took the fight to a global stage by phasing out the most harmful organochlorines worldwide. More recently, the European Union stepped in to restrict several neonicotinoids from use on outdoor crops, driven by growing alarm over their devastating impact on bee populations. Each of these restrictions, while necessary, also sent a clear and urgent message to researchers and companies alike: it was time to find something better. That search did not take long to gain momentum. The push for safer alternatives breathed new life into the field of biological pest control and accelerated its development in ways that few could have anticipated.

THE RESISTANCE "PROBLEM IN NUMBERS"

The first documented case of DDT resistance appeared in the common housefly (Musca domestica) in 1947. Just four years after the chemical was introduced commercially. By 1960, resistance had been confirmed in 137 insect species. By 2020, that number had grown to over 600 species across all major chemical families. This isn't bad luck. It's evolution doing exactly what it's designed to do. Whenever a pesticide kills most of a pest population, the few survivors with natural resistance breed and pass that trait on. Over time, the resistant individuals become the whole population.

3. Biological Control: Using Nature to Fight Pests

3.1 The Basic Idea

Here is a key insight that took agriculture a long time to fully appreciate that insects are only pests because something is missing. In a natural, undisturbed ecosystem, most insect populations are kept in check by predators, parasites, and diseases. When we remove those checks by simplifying farms into monocultures or by spraying pesticides that kill everything, pests thrive unchecked.

Biological control works by putting those natural checks back in place. In 1888, California's citrus industry was being devastated by the cottony cushion scale insect. Scientists imported a small beetle from Australia — the vedalia beetle (*Rodolia cardinalis*), which was a natural predator of the scale insect. Within two years, the outbreak was over. This remains one of the most impressive pest control success stories in history.

3.2 Three Ways Biological Control Works

3.2.1 Classical Biological Control

When a pest finds its way into a new region, often slipping through borders unnoticed on the back of global trade, it arrives without the natural enemies that once kept it in check back home. With no predators, parasites, or diseases standing in its way, its population is free to explode at a terrifying pace. Classical biological control offers a deeply logical response to this problem. It involves tracking down those natural enemies in the pest's original homeland, rigorously testing them to ensure they pose no threat to other species, and then carefully releasing them into the regions where the pest is now running rampant.

One of the most powerful and moving examples of this approach in action is the story of the cassava mealybug in Africa. This seemingly insignificant insect was quietly devastating cassava crops across the continent, threatening a food source that millions of families depended on simply to survive. Scientists traced the pest back to its South American origins and discovered a natural ally in the form of a tiny parasitic wasp known as *Anagyrus lopezi*. The wasp was released across Africa, and what happened next was remarkable. It spread through the continent on its own terms, sought out the mealybug with extraordinary precision, and gradually brought its population under control. The result was nothing short of life changing, as an estimated 20 million farming families had their livelihoods saved by the quiet and determined work of a single species of wasp.

3.2.2 Augmentative Biological Control

Sometimes natural enemies are already present but not in high enough numbers. Augmentative biological control involves mass-rearing these beneficial organisms in a laboratory and releasing them into the field.

- **Inoculative release:** Small numbers of natural enemies are released at the start of the season and allowed to

Table 2: The main types of biological control agents, what they attack, and where they are most commonly used.

Type of Agent	Examples	Pests They Target	Where They're Used
Parasitic wasps	*Trichogramma* spp., *Aphidius colemani*, *Encarsia formosa*	Caterpillar eggs; aphids; whitefly	Cereals, vegetables, glasshouses
Predatory insects	Lacewings, *Orius* bugs, ladybirds	Aphids, thrips, mites	Vegetables, orchards, field crops
Fungal pathogens	Beauveria bassiana, Metarhizium anisopliae	Whitefly, thrips, soil pests	Wide range of crops
Parasitic nematodes	*Steinernema* and *Heterorhabditis* spp.	Soil-dwelling larvae and pupae	Turf, ornamentals, vegetables
Bacterial insecticides	*Bacillus thuringiensis* (Bt), Spinosad	Caterpillars, flies, beetles	Field crops, vegetables, forestry
Predatory mites	Phytoseiid mites (*Phytoseiulus*, *Neoseiulus*)	Spider mites, thrips	Glasshouses, orchards

reproduce and spread, providing protection throughout the growing period.

- **Inundative release:** Large numbers are released all at once to knock down a pest population quickly. Trichogramma wasps , which lay their eggs inside pest eggs, killing them before they hatch, are the most widely used biological control agents in the world.

3.2.3 Conservation Biological Control

The most ecologically sustainable approach doesn't involve releasing anything at all. Conservation biological control is about managing the farm environment to support the natural enemies that are already there. This means planting wildflower strips at field edges to give beneficial insects a place to feed and shelter, reducing tillage so that ground-dwelling predators like beetles and spiders aren't disturbed, and choosing pesticides that are less harmful to non-target insects when spraying is necessary.

Research has consistently shown that farms with well-managed wildlife habitats at their edges have significantly lower pest pressure. One study found that good field margins reduced aphid numbers in adjacent crops by 50–70% compared with crops surrounded by bare soil without any spraying at all.

3.3 Microbial Pest Control

Some of the most powerful weapons in the fight against agricultural pests are ones we cannot even see with the naked eye. Bacteria, fungi, and other microscopic organisms can be every bit as lethal to harmful insects as any synthetic chemical, yet they come with a crucial advantage: they are far more selective in what they target, leaving the rest of the natural world largely untouched.

The most celebrated example is a naturally occurring soil bacterium called *Bacillus thuringiensis*, more commonly known as Bt. When consumed by certain insect larvae, the proteins this bacterium produces act as a deadly poison. Bt has been quietly serving agriculture since the 1960s and has grown to become the most widely used microbial insecticide on the planet. What makes it even more remarkable is its versatility. Different strains have evolved to target different groups of insects, with one strain lethal to caterpillars, another capable of eliminating mosquito larvae, and yet another zeroing in on beetles. And through all of this, Bt remains completely harmless to bees, birds, mammals, and humans, making it one of the most responsible pest control tools ever discovered.

Entomopathogenic fungi such as *Beauveria bassiana* and *Metarhizium anisopliae* take a different but equally fascinating approach. Their spores do not need to be eaten. Instead, they land on an insect, penetrate directly through its outer shell, and then grow from within, eventually consuming and killing the host entirely. This remarkable

ability to attack from the outside in makes these fungi particularly valuable against some of the most stubborn and destructive pests in agriculture, including sap-sucking insects like aphids and whiteflies that have long frustrated farmers around the world.

4. Integrated Pest Management: The Best of Both Worlds

4.1 What Is IPM and Where Did It Come From?

Integrated Pest Management, widely known as IPM, is built on a principle that is as refreshingly sensible as it is revolutionary: use every available pest control tool wisely, deploy them only when they are truly necessary, and always in ways that protect people, beneficial organisms, and the broader environment from unnecessary harm. The concept was formally brought to life in the late 1950s by four pioneering scientists, Stern, Smith, van den Bosch, and Hagen, who introduced a game-changing idea known as the Economic Threshold. The thinking behind it was elegant in its simplicity. There is no point treating a pest problem unless the damage that pest is likely to cause will actually cost more than the treatment itself. In other words, not every pest sighting is a crisis, and not every crop field needs to be doused in chemicals at the first sign of trouble.

This was a radical shift in thinking at the time. Before IPM entered the conversation, the common practice among farmers was to spray on a rigid, predetermined schedule, regardless of whether pest populations were actually at levels capable of causing meaningful harm. It was a reactive and often wasteful approach that treated the calendar as the enemy rather than the pest itself. IPM challenged that mindset head on and replaced it with something far more measured, intelligent, and ultimately more effective for both the farmer and the world around them.

The four pillars of IPM are:

- **Prevention first:** Choose resistant crop varieties, rotate crops, time planting to avoid pest peaks, and keep fields clean. Deal with problems before they start.
- **Monitor and measure:** Regularly walk your fields, count pests, and compare what you find against established thresholds. Do not spray based on a hunch; spray based on evidence .
- Use biological and cultural controls first: If intervention is needed, reach for natural enemies, habitat management, or other non-chemical tools before considering pesticides.
- Use chemicals carefully and selectively: If pesticides are necessary, choose the most targeted option available, apply it at the right time, and rotate between different chemical families to slow the development of resistance.

4.2 Knowing When to Act: The Economic Threshold

The Economic Injury Level, commonly referred to as the EIL, represents the precise point at which the damage being inflicted by a pest population becomes equal in cost to what it would take to bring that population under control. In other words, it is the tipping point where doing nothing finally becomes more expensive than taking action. Closely connected to this is the Economic Threshold, or ET, which is deliberately set a step below the EIL. This is the earlier warning line, the point at which a farmer must act immediately in order to prevent pest numbers from climbing any further and crossing into genuinely damaging territory. The intentional gap between these two levels is not arbitrary. It exists to allow whatever treatment is applied the necessary time to take effect before the situation spirals beyond the point of cost-effective recovery. Together, these two thresholds give farmers a rational, evidence- based framework for deciding not just whether to act, but precisely when.

A REAL-WORLD EXAMPLE: Aphids in Wheat

For grain aphids (Sitobion avenae) in wheat in the UK, the Economic Threshold during the critical flowering stage is about 500 aphids per tiller, or pest colonies visible on more than two-thirds of the plants. Below this level, the cost of spraying is not justified by the yield loss being prevented. Studies have shown that threshold-based aphid management reduces pesticide applications by 40–60% with no measurable loss of yield compared with farmers who spray on a set schedule regardless of what they find during field monitoring.

4.3 Where Do Chemicals Fit In?

A common misconception about IPM is that it calls for the complete elimination of pesticides. That is simply not the case. What IPM actually demands is the elimination of unnecessary pesticides. When pest populations genuinely surge beyond economic thresholds and neither biological nor cultural controls prove sufficient, chemical intervention remains a fully legitimate and important option. The real difference lies not in whether chemicals are used, but in how thoughtfully they are chosen and applied. Within an IPM framework, pestmanagers prioritize the most selective pesticide available, one that effectively eliminates the target pest while causing the least possible disruption to everything else around it.

- Choosing a chemical that targets a specific biological pathway found only in the pest, leaving beneficial insects unharmed.
- Applying chemicals at times when beneficial insects are less active for example, spraying in the early morning or evening when bees aren't foraging.
- Applying to soil rather than the crop canopy, reducing exposure to flying insects.

4.4 Managing Resistance: Don't Give Pests an Easy Win

Insecticide resistance stands as one of the most serious threats facing modern pest management today. The most effective strategy for slowing its spread is variety. By rotating between pesticides that work through entirely different mechanisms, farmers deny pests the opportunity to adapt and build resistance to any single chemical. To make this process easier and more systematic, the Insecticide Resistance Action Committee, known as IRAC, publishes a comprehensive classification of all insecticides grouped according to their mode of action, giving pest managers a practical and reliable guide for planning smart, effective rotations.

A good resistance management plan includes:

- Rotating between insecticide groups with different modes of action from one application to the next.
- Only spraying when pest numbers genuinely justify it. Every unnecessary application adds selection pressure and accelerates resistance.
- Monitoring pest populations for early signs of reduced chemical effectiveness.
- Combining chemical control with biological and cultural tactics so that pesticides carry less of the total burden.

5. Emerging Challenges and What Comes Next

5.1 Climate Change Is Moving the Goalposts

Climate change is silently but steadily transforming the pest management landscape in ways that demand urgent attention. As temperatures rise, insects develop faster, completing more generations within a single

Table 3: How well different pesticide types fit within an IPM framework, and why.

Pesticide Type	IPM Suitability	Why	Examples
Selective synthetic	Good fit	Narrow target range; spares natural enemies	Chlorantraniliprole, spirotetramat
Microbial insecticide	Good fit	Highly specific; minimal non-target effects	Bt products, Spinosad
Insect growth regulator	Moderate fit	Disrupts growth; selective for immature stages	Methoxyfenozide, pyriproxyfen
Systemic neonicotinoid	Poor fit	Highly toxic to bees; resistance-prone; broad spectrum	Imidacloprid, thiamethoxam
Broad-spectrum pyrethroid	Poor fit	Kills natural enemies; can trigger pest rebounds	Lambda-cyhalothrin
Organophosphate	Poor fit	Broad-spectrum; vertebrate toxicity concerns	Chlorpyrifos, dimethoate

growing season and inflicting far greater damage than before. Warming conditions are also pushing pest species into regions that were once too cold to support them, expanding their reach in deeply troubling ways.

The fall armyworm serves as a stark and sobering example. A native of the Americas, it made its first appearance in sub-Saharan Africa in 2016 and within just a few years had swept across vast stretches of Africa and Asia, leaving devastated maize crops in its wake. The growing frequency of droughts is adding another layer of difficulty, as dry conditions create ideal environments for spider mites and aphids to thrive, while simultaneously weakening the fungal pathogens that nature relies on to keep those very pests under control.

5.2 Technology Is Changing the Game

Precision agriculture tools are making IPM smarter and more efficient. Drones equipped with cameras and sensors can now scan entire fields in minutes, detecting crop stress patterns caused by pests before any visible damage appears. Automated traps with built-in cameras and artificial intelligence can identify insect species from photos, giving farmers real-time data on what pests are present and in what numbers.

Computer models that combine weather data, crop growth stages, and pest development rates can now forecast pest outbreaks days in advance, allowing farmers to prepare biological control releases or targeted treatments before the problem arrives.

5.3 RNA-Based Pest Control: Science Fiction Becoming Reality

One of the most exciting recent developments is RNA interference (RNAi) is a biological mechanism that can be used to switch off specific genes in target insects. By spraying cropswith specially designed RNA molecules that match sequences in a pest's genetic code, scientists can disable essential functions in that pest and only that pest. In 2023, the US EPA approved the first commercial RNAi insecticide. The technology is still young, but its potential for ultra-precise, resistance-proof pest control is enormous.

5.4 The Hidden World of Insect Gut Bacteria

Research over the past decade has revealed that the microscopic bacteria living inside an insect's gut have a surprisingly large influence on how that insect responds to both pesticides and biological control agents. Some gut bacteria can actually break down certain insecticides, essentially detoxifying them before they can cause harm. Understanding and eventually manipulating these microbial communities could open up entirely new approaches to pest management.

6. Conclusion

The past century of pest management is, at its core, a story of hard-won lessons. Chemical pesticides handed farmers extraordinary power, but that power carried consequences no one fully foresaw. Resistant pests, broken ecosystems, dying pollinators, and poisoned environments made one thing painfully clear: the old approach could not continue.

Out of that reckoning came biological control and Integrated Pest Management, two approaches that chose cooperation with nature over confrontation. Tools like parasitic wasps, fungal pathogens, and beneficial predators are not merely greener alternatives; they are frequently more reliable, more lasting, and more cost-effective over time. IPM ties all of these tools together within a disciplined decision-making framework, ensuring every action taken is justified, precisely targeted, and part of a broader long-term strategy.

The road ahead is not without its challenges. Climate change is reshuffling pest patterns in ways that are difficult to predict. Resistance continues to evolve. And a growing global population means the pressure on food production has never been greater. Yet agricultural science is meeting this moment with real creativity, from AI-powered pest monitoring and RNAi biopesticides to precision biological control and the active conservation of beneficial insect communities. The transition from chemical dependence to ecological intelligence is not simply a scientific milestone. It is an urgent necessity, and encouragingly, it is already well underway.

References

Selected key works and resources underpinning this review.

Carson, R. (1962). Silent Spring. Houghton Mifflin, Boston.

Stern, V.M., Smith, R.F., van den Bosch, R., & Hagen, K.S. (1959). The integrated control concept. Hilgardia, 29(2), 81–101.

DeBach, P. & Rosen, D. (1991). Biological Control by Natural Enemies (2nd

ed.). Cambridge University Press.

Van Lenteren, J.C. 2012. IOBC Internet Book of Biological Control. IOBC-WPRS.

Naranjo, S.E., Ellsworth, P.C., & Frisvold, G.B. (2015). Economic value of biological control in integrated pest management. *Annual Review of Entomology*, 60, 621–645.

Pimentel, D. (2005). Environmental and economic costs of the application of pesticides primarily in the United States. *Environment, Development and Sustainability*, 7(2), 229–252.

Sparks, T.C. & Nauen, R. (2015). IRAC: Mode of action classification and insecticide resistance management. *Pesticide Biochemistry and Physiology*, 121, 122–128.

Desneux, N., Decourtye, A., & Delpuech, J.M. (2007). The sublethal effects of pesticides on beneficial arthropods. *Annual Review of Entomology*, 52, 81–106.

Lacey, L.A. et al. (2015). Insect pathogens as biological control agents: Back to the future. Journal of Invertebrate Pathology, 132, 1–41.

FAO (2020). Integrated Pest Management: In Practice. Food and Agriculture Organization of the United Nations, Rome.

IRAC (2023). IRAC Mode of Action Classification Scheme, Version 10.4. Insecticide Resistance Action Committee.

Cock, M.J.W. et al. (2010). Trends in classical biological control of insects by insects. *Biocontrol News and Information*, 31(2), 27–52.

Desneux, N. et al. (2021). Fall armyworm, an invasive pest threatening agriculture globally. *Annual Review of Entomology*, 66, 349–371.

पितृ दिवस विशेष

पिता

राणा प्रताप सिंह

पीठ पर धारण किए
दुनिया जहान की उलझने
पिता तैयार रहता है
ढोने के लिए विरासत की गठरी
संतान के आने से बहुत पहले से ही।

बेल के फल की तरह होता है पिता
भीतर से मुलायम
ऊपर से कठोर
और बहुत से रोगों की दवाई।

कोई भरोसा नहीं होता
पिता की उँगली से मजबूत

कोई प्रयास नहीं
जिसे किया जा सके
पिता के प्रयासों से अधिक बार।

मेरे भीतर और बाहर एक पृथ्वी (काव्य संग्रह), अमन प्रकाशन, कानपुर से साभार

हिन्दी कविता

शांति

राणा प्रताप सिंह

किन सड़कों से
गुजरती है, शान्ति
किन लोगों से
मिलती–जुलती
किससे चली जाती
दूर देखते ही दूर से
कब किस मुहल्ले में
ठहरती है, शान्ति ?
शांति को कहाँ पा
जाते , लोग
क्यों रूठ कर चली
जाती बिन बताए?
गाँवों
कस्बों
शहरों
जंगलों
और पठारों में
ऊँची –ऊँची पहाड़ी
कंदराओं में
शांति को
खोजते फिर रहें हैं
लोग
शांति को होना
चाहिए
धरती की तरह ठोस
और गोल
शांति का कोई
आकार
क्यों नहीं है?

काव्य संग्रह "हाशिए पर लगे निशान" से साभार

मकान नं0 247, सेक्टर–2, उद्यान–2, एल्डिको, रायबरेली रोड, लखनऊ–226025
ईमेल : dr.ranapratap59@gmail.com

Agriculture (Tamil)

Peer Reviewed
Special Section: Insect Pest Management

Role of Pollinators in Agro-Ecosystem

Divyashree P[1], Richi Awasthi[1], Rudra Pratap Singh[1] and Ambethgar V[2]

Abstract

Pollination is a critical ecosystem service that facilitates the reproductive success of angiosperms and underpins the stability of global sustainable agricultural systems. In the Indian subcontinent, a substantial proportion of agricultural output relies on insect-mediated pollination to optimize both qualitative and quantitative yield parameters. This study examines the diversity and ecological significance of pollinator communities, with particular focus on their contributions to bottle gourd, cashew, and pigeon pea ecosystems. Diverse taxa from orders such as Hymenoptera (Apis mellifera), Coleoptera, Lepidoptera, and Hemiptera constitute the primary pollinator guild, with specific species exhibiting dominance in particular crop architectures. Beyond mere fruit set enhancement, these vectors promote genetic heterozygosity through cross-pollination, thereby increasing crop resilience. Advanced precision techniques, such as entomovectoring, further integrate biological agents into integrated pest and disease management. Despite their economic value—estimated globally between $235 and $577 billion pollinators face anthropogenic stressors including indiscriminate pesticide application, habitat fragmentation, and anthropogenic climate change. Consequently, implementing robust conservation frameworks is imperative to safeguard global food security.

Keywords: Pollination, insect pollinators, Apis mellifera, Entomovectoring, conservation strategies.

சுருக்கம்

மலர்மகரந்தப் பரவல் என்பது பூக்கும் தாவரங்கள் இனப்பெருக்கம் பெற மிகவும் அவசியமான இயற்கைச் சேவையாகும். இது உலகளாவிய நிலையான வேளாண்மை முறைகளின் நிலைத்தன்மைக்கும் முக்கிய அடிப்படையாக விளங்குகிறது. இந்திய துணைக்கண்டத்தில், விவசாய உற்பத்தியின் ஒரு பெரிய பகுதி பூச்சிகளின் மூலம் நடைபெறும் மகரந்தப் பரவலின்மீது சார்ந்துள்ளது. இது விளைச்சலின் அளவையும் தரத்தையும் மேம்படுத்த உதவுகிறது. இந்த ஆய்வு, மகரந்தப் பரப்பி உயிரினங்களின் பல்வகை தன்மையையும் அவற்றின் சூழலியல் முக்கியத்துவத்தையும் ஆய்வு செய்கிறது. குறிப்பாக சுரைக்காய், முந்திரி, துவரை போன்ற பயிர்களில் அவை அளிக்கும் பங்களிப்பை விளக்குகிறது. தேனீக்கள் (ஐரோப்பிய தேனீ), வண்டு வகைகள், சிலந்திப் பூச்சிகள் மற்றும் வண்ணத்துப்பூச்சிகள், போன்ற பல்வேறு பூச்சி குழுக்கள் முக்கிய மகரந்தப் பரப்பிகளாக உள்ளன. இதில் சில குறிப்பிட்ட இனங்கள் குறிப்பிட்ட பயிர்களில் அதிகமாக காணப்படுகின்றன. மகரந்தப் பரவல் வெறும் கனிவளர்ச்சியை மட்டும் அதிகரிப்பதல்ல; இது குறுக்குப் பரவலின் மூலம் தாவரங்களில் மரபணு வேறுபாட்டை

படம் 1 : சூரியகாந்தி மலரில் தேனீ மூலம் மகரந்தச் சேர்க்கை; குறிப்பு மூலம் : United States Geological Survey.

அதிகரிக்கிறது. இதனால் பயிர்கள் நோய்கள் மற்றும் சூழல் மாற்றங்களுக்கு எதிராக அதிக சக்தி பெறுகின்றன. மேலும், பூச்சிகள் மூலம் நுண்ணுயிரி பரப்பல் போன்ற மேம்பட்ட நுட்பங்கள் மூலம்

[1]D1Acharya Narendra Deva University of Agriculture & Technology, Department of Entomology, Kumarganj-224 229, Ayodhya (Uttar Pradesh)
2Tamil Nadu Agricultural University, JSA College of Agriculture and Technology,
Avatti-606 108, Cuddalore District, Tamil Nadu, India.
*Corresponding author email: rudrapsingh.doe@gmail.com

பூச்சிகளை பயன்படுத்தி நோய் மற்றும் பூச்சி மேலாண்மை முறைகளையும் இணைக்க முடிகிறது. ஆனால், உலகளவில் $235 முதல் $577 பில்லியன் மதிப்புடைய பொருளாதார முக்கியத்துவம் கொண்டிருந்தாலும், மகரந்தப் பரப்பிகள் பல சவால்களை எதிர்கொள்கின்றன. அதிகப்படியான பூச்சிக்கொல்லி பயன்பாடு, வாழ்விடம் குறைவு, மற்றும் காலநிலை மாற்றம் போன்ற மனிதச் செயல்கள் அவற்றை பாதிக்கின்றன. எனவே, இவ்வுயிரினங்களை பாதுகாக்க வலுவான பாதுகாப்பு நடவடிக்கைகள் அவசியம். இது உலகளாவிய உணவுப் பாதுகாப்பை உறுதி செய்ய உதவும்.

முக்கியச் சொற்கள்: மகரந்தச் சேர்க்கை, மகரந்தப் பரப்பிகள், ஐரோப்பிய தேனீ, பூச்சிகள் மூலம் நுண்ணுயிரி பரப்பல், பாதுகாப்பு வழிமுறைகள்.

முன்னுரை

மகரந்தச் சேர்க்கை என்பது மலர்களின் பல்வகைத் தன்மையையும் மனிதர்களின் உணவுப் பாதுகாப்பையும் காக்க மிகவும் முக்கியமான இயற்கைச் சேவையாகும் .இது விவசாய உற்பத்தியை அதிகரிக்க உதவும் முக்கிய காரணமாகும் .உலகில் உள்ள உணவுப் பயிர்களில் சுமார் 75% (பழங்கள், காய்கறிகள், எண்ணெய் விதைகள் போன்றவை (மகரந்தப் பரப்பலின் மீது நேரடியாக சார்ந்துள்ளன. தேனீ, வண்ணத்துப்பூச்சி போன்ற பூச்சிகள் மட்டுமல்லாமல், சில பறவைகள் மற்றும் விலங்குகளும் மகரந்தப் பரப்பில் பங்கு பெறுகின்றன. இவ்வுயிரினங்கள் இல்லையெனில், பயிர்களின் விளைச்சல் மிகவும் குறைந்து, உலகளாவிய உணவுப் பாதுகாப்பு பாதிக்கப்படும். இந்த செயல்முறையின் அடிப்படை என்னவெனில், மலர்கள் தேன் போன்றவற்றை உருவாக்கி மகரந்தப் பரப்பிகளை ஈர்க்கின்றன .பூச்சிகள் மலர்களில் உணவு தேடும் போது, மகரந்தத் தூள் அவற்றின் உடலில் ஒட்டிக் கொள்ளும் .பின்னர் அவை மற்றொரு மலருக்கு செல்லும் போது, அந்த மகரந்தம் அங்கு பரவுகிறது .இதனால் உரப்பெருக்கம் நடைபெற்று, தாவரங்கள் கனியும் விதையும் உருவாகின்றன. எனவே, மகரந்தச் சேர்க்கை என்பது தாவர வளர்ச்சிக்கும், உணவுத் தயாரிப்புக்கும் மிகவும் அவசியமான ஒரு இயற்கை செயலாகும்.

மகரந்தப் பரப்பிகள் என்பது பூச்சிகள் (தேனீக்கள், பட்டாம்பூச்சிகள், இரவுப்பூச்சிகள், ஈக்கள், வண்டுகள்), வெளவால்கள் மற்றும் பறவைகள் ஆகும்.

இந்தியாவில், பூச்சிகள் மூலம் நடைபெறும் மகரந்தச் சேர்க்கை மிகவும் முக்கியமானது. சுமார் 80% பயிர்கள் நல்ல விளைச்சல் பெற விலங்குகள் (பூச்சிகள்) உதவியை தேவையாகக் கொண்டுள்ளன. தமிழ்நாட்டின் கோயம்புத்தூரில் செய்யப்பட்ட ஆய்வுகள் இந்த முக்கியத்துவத்தை காட்டுகின்றன. அந்த ஆய்வுகளின்படி, தேனீக்களின் செயல்பாடு பருத்தி பயிரின் விளைச்சலை 23% முதல் 53% வரை அதிகரிக்க முடியும் (David & Ramamurthy, 2017). இதனால், இவ்வகை பூச்சிகள் விவசாயத்தையும்

படம் 2: பூச்சி மூலம் மகரந்தச் சேர்க்கை; ஆதாரம் :*Nature and Ecology – Femilab.*

படம் 3 : வெளவால் மூலம் மகரந்தச் சேர்க்கை; ஆதாரம் : *The National Wildlife Federation.*

படம் 4 : பறவைகள் மூலம் மகரந்தச் சேர்க்கை; ஆதாரம் :*Roundglass Sustain.*

பொருளாதாரத்தையும் நிலைப்படுத்துவதில் முக்கிய பங்கு வகிக்கின்றன என்பது உறுதியாகிறது.

மகரந்தச் சேர்க்கை முறைகள் மற்றும் மகரந்த பரப்பிகளின் வகைகள்

பாலணு பரிமாற்றம் எப்படி நடக்கிறது?

மகரந்தச் சேர்க்கை என்பது, பூவின் ஆண் பகுதியில் உள்ள மகரந்தத் துகள்கள், பெண் பகுதியின் மேல்பகுதிக்கு செல்லும் செயலாகும். இது விதை உருவாகும் முன் மிகவும் முக்கியமான படியாகும். இந்த செயல்முறை இரண்டு வகைகளாகப் பிரிக்கப்படுகிறது. தன்னிச்சை மகரந்தச் சேர்க்கை என்பது ஒரே பூவிலேயே நடக்கும். இது வெளிப்புற உதவி இல்லாமலேயே இனப்பெருக்கத்தை உறுதிப்படுத்துகிறது. பிற பூக்களுக்கிடையிலான மகரந்தச் சேர்க்கை என்பது ஒரு செடியிலிருந்து மற்றொரு செடிக்கு மகரந்தம் செல்லும் (Ambethgar, 2002). இது மரபணு மாறுபாட்டை அதிகரித்து, செடிகள் சூழலுக்கு ஏற்றாற்போல் வளர உதவுகிறது. தன்னிச்சை மகரந்தச் சேர்க்கை தானாகவே நடைபெறலாம். ஆனால் பிற பூக்களுக்கிடையிலான மகரந்தச் சேர்க்கை நடைபெற, காற்று, நீர் போன்ற இயற்கை காரணிகள் அல்லது உயிரினங்களின் உதவி தேவைப்படுகிறது.

படம் 5: அத்தி குளவி; ஆதாரம்: Fig Web.

உயிரினங்களால் நடைபெறும் மகரந்தச் சேர்க்கையின் வகைகள்

மகரந்தச் சேர்க்கையில் பல்வேறு உயிரினங்கள் முக்கிய பங்கு வகிக்கின்றன. அவை:

பூச்சிகள் மூலம் மகரந்தச் சேர்க்கை:
இது மிகவும் முக்கியமான முறையாகும். தேனீக்கள், பட்டாம்பூச்சிகள், ஈக்கள், வண்டு போன்றவை இதில் அடங்கும். இவை மலரில் உள்ள தேன் மற்றும் மகரந்தத்தைத் தேடி வரும் போது, மகரந்தத்தை ஒரு மலரிலிருந்து மற்றொரு மலருக்கு கொண்டு செல்கின்றன.

பறவைகள் மூலம் மகரந்தச் சேர்க்கை:
தேன் குடிக்கும் பறவைகள் (உதாரணம்: சூரியப் பறவை) சில சிறப்பு வடிவுள்ள மலர்களுக்கு மகரந்தச் சேர்க்கை செய்கின்றன.

வௌவால்கள் மூலம் மகரந்தச் சேர்க்கை : குறிப்பாக வெப்பமண்டல பகுதிகளில், இரவில் மலரும் பூக்களுக்கு வௌவால்கள் மகரந்தத்தை பரப்புகின்றன.

இந்த உயிரினங்களை மலர்களுக்கு ஈர்க்க, மலர்கள் மணமும் நிறமும் பயன்படுத்துகின்றன.

இதனால், மகரந்தத் துகள்கள் உயிரினங்களின் உடலில் ஒட்டிக் கொண்டு, பிற மலர்களுக்கு எளிதாக பரவுகின்றன.

References

Ambethgar, V. (2002). Insect visitors of cashew inflorescence in north-eastern zone of Tamil Nadu, India. Progressive Horticulture, 34:223-229

Chaudhary, O. P., & Chand, R. (2017). Economic benefits of animal pollination to Indian agriculture. Indian Journal of Agricultural Sciences, 87(9), 1117-1138.

David, B. V., & Ramamurthy, V. V. (2017). Elements of Economic Entomology (8th ed.). Brillion Publishing, New Delhi, India.

Deva Dharshini, V., Srinivasan, M. R., Saminathan, V. R., Murugan, M., Angappan, K., Kokiladevi, E.,& Premika, R. (2026). Entomovectoring: a green technology for crop protection. Journal of Plant Diseases and Protection, 1333(1), 12.

Manju, R., Srinivasan, M. R., Ganapathy, N., Mohankumar, S., & Geethanjali, S. (2022). Plant-pollinator interaction, pollinator diversity and relative abundance in bottle gourd (Lageneria siceraria) in Coimbatore.

Ollerton, J. (2017). Pollinator diversity: distribution, ecological function, and conservation. Annual Review Of Ecology, Evolution, and Systematics, 48, 353-376. (Ollerton, 2017)

Padhy, D., Satapathy, C. R., Borkataki, S., Shankar, T., & Ray, S. (2024). Diversity and Relative Abundance of Insect Pollinators on Pigeon Pea (Cajanus cajan L.) in Gajapati District of Odisha. Legume Research: An International Journal, 47(10).

Ranguwal, S. (2023). Economic benefits of animal pollination to Punjab agriculture. Journal of Agriculture

प्रौद्योगिकी

नवीन ज्ञान–क्रन्ति : आत्मनिर्भर भारत हेतु शिक्षा, प्रौद्योगिकी तथा स्वदेशी ज्ञान का एकीकरण — एक पंच–आयामी परिप्रेक्ष्य

मनोहर लाल (कौशिक)

सार

मानवता वर्तमान में एक नवीन ज्ञान–क्रान्ति (New Knowledge Revolution) के युग में प्रवेश कर रही है, जिसमें शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, प्रौद्योगिकी तथा स्वदेशी ज्ञान परम्पराएँ सामाजिक एवं आर्थिक विकास को आकार देने में निरन्तर परस्पर अन्तःक्रिया कर रही हैं। कृषि इस परिवर्तन का एक विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है, क्योंकि यह विज्ञान, समाज, संस्कृति तथा पारिस्थितिकी को एक सूत्र में जोड़ती है।

यह शोध–पत्र मानव सशक्तिकरण के पंच–आयामी मॉडल का प्रतिपादन करता है, जिसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, प्रौद्योगिकीय, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक आयाम सम्मिलित हैं। इनमें आध्यात्मिक आयाम एक अधि–आयाम (Meta & Dimension) के रूप में कार्य करता है, जो अन्य चार आयामों को नैतिक दिशा एवं संतुलन प्रदान करता है।

इस रूपरेखा को कृषि तथा आत्मनिर्भर भारत की अवधारणा पर लागू करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रौद्योगिकीय नवाचार को सामाजिक समावेशन, सांस्कृतिक निरन्तरता, बौद्धिक विकास तथा पारिस्थितिक उत्तरदायित्व के साथ एकीकृत किया जाना चाहिए। भारतीय तथा वैश्विक चिन्तकों के विचारों के आलोक में यह लेख तर्क प्रस्तुत करता है कि सतत् विकास के लिए शिक्षा, प्रौद्योगिकी तथा स्वदेशी ज्ञान का सामंजस्यपूर्ण समन्वय अनिवार्य है। ऐसा समन्वय एक ऐसे ज्ञान–समाज की रचना कर सकता है जो उत्पादक, न्यायसंगत, सार्थक तथा पर्यावरणीय दृष्टि से टिकाऊ हो।

कुंजी शब्दः कृषि, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, आत्मनिर्भर भारत, स्वदेशी ज्ञान, सतत् विकास, पंच–आयामी मॉडल।

1. प्रस्तावना

विश्व कृषि–क्रान्ति, औद्योगिक क्रान्ति, सूचना–क्रान्ति तथा डिजिटल–क्रान्ति के विभिन्न चरणों से होकर अब एक नवीन ज्ञान–क्रान्ति के दौर में प्रवेश कर चुका है। पूर्ववर्ती क्रान्तियों के विपरीत, जो मुख्यतः भौतिक संसाधनों अथवा सूचना–शक्ति पर आधारित थीं, यह नई क्रान्ति ज्ञान, बुद्धिमत्ता, नैतिकता तथा मानवीय मूल्यों की परस्पर अन्तःक्रिया से संचालित है।

इस परिप्रेक्ष्य में आत्मनिर्भर भारत की राष्ट्रीय दृष्टि तथा राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) के उद्देश्य विशेष महत्त्व ग्रहण करते हैं। आज आत्मनिर्भरता का अर्थ आत्म–निषेध या पृथकता नहीं, बल्कि स्वदेशी सामर्थ्य को आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के साथ रचनात्मक रूप से संयोजित करने की क्षमता है।

कृषि इस एकीकरण का सर्वाधिक उपयुक्त क्षेत्र है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, जैव–प्रौद्योगिकी, संवेदक (Sensors), ड्रोन तथा डिजिटल मंच (Platforms) कृषि उत्पादकता और लचीलापन बढ़ाने की अपार क्षमता रखते हैं। तथापि, मात्र प्रौद्योगिकीय प्रगति सतत् एवं न्यायपूर्ण विकास की गारंटी नहीं दे सकती। इसके लिए एक व्यापक वैचारिक रूपरेखा आवश्यक है, जो सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक निरन्तरता, बौद्धिक विकास तथा नैतिक उत्तरदायित्व के साथ तकनीकी प्रगति का संतुलन स्थापित कर सके।

2. दार्शनिक आधार

समकालीन विश्व की अनेक चुनौतियाँकृजैसे पारिस्थितिक क्षरण, सामाजिक असमानता तथा नैतिक अनिश्चितता–ज्ञान के खण्डित दृष्टिकोणों का परिणाम हैं। आज विश्वभर के विद्वान और चिन्तक अधिक समग्र एवं एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता को स्वीकार कर रहे हैं।

भारतीय बौद्धिक परम्पराओं ने सदैव विविधता में एकता पर बल दिया है। स्वामी विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, महात्मा गांधी, श्री अरविन्द, जवाहरलाल नेहरू तथा अमर्त्य सेन जैसे विचारकों ने विभिन्न संदर्भों में ज्ञान को नैतिक एवं मानवीय मूल्यों से जोड़ने की आवश्यकता प्रतिपादित की है।

इस समेकित दृष्टि का एक आधुनिक रूप साइबर–भौतिक–सामाजिक तंत्र (Cyber-Physical-Social System: CPSS) है, जिसमें भौतिक प्रक्रियाएँ, डिजिटल प्रौद्योगिकियाँ तथा मानवीय सम्बन्ध निरन्तर अन्तःक्रिया करते हैं। तथापि, ब्ै अपने आप में नैतिक दिशा प्रदान नहीं करता। इसलिए एक व्यापक मानव–केंद्रित रूपरेखा की आवश्यकता बनी रहती है।

भूतपूर्व निदेशक, सोसिस (SOCIS) इग्नू, नई दिल्ली

ईमेलः prof.manohar.lal@gmail.com

3. मानव सशक्तिकरण का पंच–आयामी मॉडल

प्रस्तावित मॉडल पाँच परस्पर सम्बद्ध आयामों पर आधारित है:

इस मॉडल की विशिष्टता इसका आध्यात्मिक अधि–आयाम है, जो किसी पृथक क्षेत्र के रूप में नहीं, बल्कि एक समेकित अक्ष (Integrating Axis) के रूप में कार्य करता है। यह अन्य चार आयामों को दिशा, संतुलन तथा नैतिक अभिमुखता प्रदान करता है।

इस संतुलन के अभाव में

- प्रौद्योगिकी शोषणकारी बन सकती है;
- बुद्धि मात्र साधनात्मक (Instrumental) बन सकती है;
- संस्कृति जड़ एवं रूढ़ हो सकती है;
- समाज विखण्डित हो सकता है।

अतः यह मॉडल एकांगी विकास के स्थान पर संतुलित एवं समग्र विकास का समर्थन करता है।

कृषि इस पंच–आयामी अन्तर्सम्बन्ध का उत्कृष्ट उदाहरण है, क्योंकि यह एक साथ वैज्ञानिक ज्ञान, तकनीकी नवाचार, सांस्कृतिक परम्परा, सामाजिक सहयोग तथा पारिस्थितिक नैतिकता पर निर्भर करती है।

4. शिक्षा, प्रौद्योगिकी और स्वदेशी ज्ञान का एकीकरण

(क) शिक्षा

शिक्षा को केवल सूचना–संचरण की प्रक्रिया न रहकर प्रज्ञा, सृजनशीलता तथा उत्तरदायित्व के संवर्धन का माध्यम बनना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 अन्तर्विषयी (Interdisciplinary) तथा अनुभवाधारित (Experiential) अधिगम के लिए व्यापक अवसर प्रदान करती है।

कृषि शिक्षा में विज्ञान, नैतिकता, पारिस्थितिकी तथा स्थानीय ज्ञान का समन्वय आवश्यक है। किसानों को केवल लाभार्थी नहीं, बल्कि ज्ञान–सहभागी (Knowledge Partners) के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए, क्योंकि उनका अनुभव पीढ़ियों से संचित पारिस्थितिक बुद्धिमत्ता का प्रतिनिधित्व करता है।

(ख) प्रौद्योगिकी

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित मौसम पूर्वानुमान, परिशुद्ध सिंचाई, ड्रोन–मानचित्रण तथा निर्णय–सहायक प्रणालियाँ कृषि की उत्पादकता एवं स्थायित्व में महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकती हैं।

किन्तु प्रौद्योगिकी को स्वामी नहीं, सहायक (Enabler) की भूमिका निभानी चाहिए। लक्ष्य होना चाहिए– "उचित संदर्भ में उचित प्रौद्योगिकी", जो स्थानीय क्षमताओं को सुदृढ़ करे, न कि निर्भरता उत्पन्न करे।

(ग) स्वदेशी ज्ञान

पारम्परिक कृषि पद्धतियों में मृदा संरक्षण, बीज–विविधता, जल प्रबंधन तथा सतत् खेती से सम्बन्धित अत्यन्त मूल्यवान ज्ञान निहित है।

स्वदेशी और आधुनिक ज्ञान को परस्पर विरोधी मानने के बजाय उन्हें संयोजित कर एक संकर बुद्धिमत्ता (Hybrid Intelligence) विकसित की जानी चाहिए, जिसमें स्थानीय अनुभव आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी द्वारा और अधिक सशक्त बने।

इन तीनों के समन्वय से एक जीवंत ज्ञान–पारिस्थितिकी (Living Knowledge Ecosystem) का निर्माण सम्भव है, जो सामाजिक रूप से समावेशी, सांस्कृतिक रूप से निहित, प्रौद्योगिकीय रूप से सृजनशील, बौद्धिक रूप से मुक्त तथा नैतिक रूप से निर्देशित हो।

5. प्रौद्योगिकी की नैतिक चुनौतियाँ

प्रत्येक तकनीकी प्रगति अवसरों और जोखिमों दोनों को जन्म देती है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता तथा डिजिटल प्रणालियाँ उत्पादकता बढ़ा सकती हैं, किन्तु वे असमानता, निगरानी, निर्भरता तथा पारिस्थितिक दबाव भी उत्पन्न कर सकती हैं।

अतः मूल चुनौती केवल तकनीकी नहीं, बल्कि नैतिक है।

इस संदर्भ में प्रौद्योगिकीय धर्म (Technological Dharma) की अवधारणा महत्वपूर्ण है। यहाँ धर्म का अर्थ किसी संप्रदाय विशेष से नहीं, बल्कि उत्तरदायित्व, पारिस्थितिक चेतना, सामाजिक न्याय तथा दीर्घकालिक स्थिरता से निर्देशित नवाचार है।

तीन मूलभूत प्रश्न पूछे जाने चाहिए–

1. क्या यह प्रौद्योगिकी मानव गरिमा एवं स्वायत्तता को बढ़ाती है?
2. क्या यह पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखती है?
3. क्या इसके लाभ न्यायपूर्ण रूप से वितरित होते हैं?

जब प्रौद्योगिकी नैतिक सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित होती है, तब वह प्रभुत्व

आयाम	मूल अर्थ	कृषि में प्रासंगिकता
सामाजिक	सहयोग, न्याय, समावेशन	किसान सहभागिता, सहकारी संस्थाएँ, ग्रामीण संगठन
सांस्कृतिक	पहचान, निरन्तरता, सृजनशीलता	स्वदेशी ज्ञान, पारम्परिक प्रथाएँ, जैव–विविधता
प्रौद्योगिकीय	नवाचार एवं क्षमता	कृत्रिम बुद्धिमत्ता, IoT, रोबोटिक्स, परिशुद्ध कृषि
बौद्धिक	जिज्ञासा और शिक्षा्अधिगम	शोध, शिक्षा, ज्ञान–साझेदारी
आध्यात्मिक	उद्देश्य, सामंजस्य, नैतिकता	पारिस्थितिक उत्तरदायित्व एवं जीवन के प्रति सम्मान

का नहीं, बल्कि सशक्तिकरण का साधन बन जाती है।

6. आत्मनिर्भर कृषि भारत हेतु रूपरेखा का कार्यान्वयन

इस मॉडल के व्यावहारिक क्रियान्वयन के लिए शिक्षा, प्रौद्योगिकी, समाज तथा शासन के स्तर पर समन्वित प्रयास आवश्यक हैं।

शैक्षिक सुधार

- अन्तर्विषयी पाठ्यक्रम;
- क्षेत्राधारित अनुभवात्मक अधिगम;
- किसानों के लिए आजीवन अधिगम मंच;
- कृषि शिक्षा में नैतिकता एवं सतत् विकास का समावेश।

प्रौद्योगिकीय उपाय

- मुक्त–स्रोत (Open Source) कृषि AI प्रणालियाँ;
- लघु किसानों हेतु किफायती परिशुद्ध कृषि उपकरण;
- पारदर्शी एवं उत्तरदायी डिजिटल मंच;
- समुदाय–आधारित डेटा प्रणालियाँ।

सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहल

- किसान सहकारी संस्थाओं का सुदृढ़ीकरण;
- स्वदेशी कृषि–ज्ञान का संरक्षण;
- समुदाय आधारित ज्ञान–साझाकरण नेटवर्क;
- पारिस्थितिक स्थिरता से जुड़ी सांस्कृतिक परम्पराओं का संवर्धन।

नीतिगत उपाय

- उभरती प्रौद्योगिकियों का नैतिक मूल्यांकन;
- अनुसंधान प्रणालियों में स्वदेशी ज्ञान का समावेश;
- कृषि, शिक्षा तथा प्रौद्योगिकी संस्थानों के बीच सहयोग;
- उत्पादकता एवं स्थिरता को संयुक्त रूप से बढ़ाने वाले नवाचारों को प्रोत्साहन।

इस दिशा में डिजिटल कृषि–पंचायत एक सम्भावित संस्थागत मॉडल हो सकता है, जहाँ किसान, वैज्ञानिक, शिक्षक तथा प्रौद्योगिकी विशेषज्ञ मिलकर स्थानीय ज्ञान और आधुनिक डिजिटल उपकरणों के आधार पर समाधान विकसित करें।

7. निष्कर्ष

नवीन ज्ञान–क्रान्ति ज्ञान को शक्ति (Power) से उत्तरदायित्व (Responsibility) की ओर रूपान्तरित करने का आह्वान करती है। इक्कीसवीं शताब्दी की प्रमुख चुनौतियाँ–पारिस्थितिक अस्थिरता, असमानता तथा सामाजिक विखण्डन–केवल प्रौद्योगिकी के माध्यम से हल नहीं की जा सकतीं।

मानव सशक्तिकरण का पंच–आयामी मॉडल तकनीकी नवाचार को सामाजिक समावेशन, सांस्कृतिक निरन्तरता, बौद्धिक विकास तथा नैतिक उत्तरदायित्व के साथ जोड़ने की एक समग्र रूपरेखा प्रदान करता है। इसमें आध्यात्मिक अधि–आयाम वह मार्गदर्शक सिद्धान्त है जो अन्य सभी आयामों के मध्य संतुलन बनाए रखता है।

कृषि के क्षेत्र में लागू होने पर यह मॉडल ऐसे आत्मनिर्भर कृषि भारत की परिकल्पना प्रस्तुत करता है, जिसमें शिक्षा, प्रौद्योगिकी तथा स्वदेशी ज्ञान मिलकर एक उत्पादक, न्यायपूर्ण और सतत् भविष्य का निर्माण करते हैं।

नवीन ज्ञान–क्रान्ति का अंतिम लक्ष्य केवल अधिक बुद्धिमान मशीनें बनाना नहीं है, बल्कि अधिक विवेकपूर्ण समाजों का निर्माण करना है–ऐसे समाज, जहाँ मानवीय सृजनशीलता, प्रौद्योगिकीय क्षमता और नैतिक उत्तरदायित्व साथ–साथ विकसित हों।

हिंदी कविता

धरती का बढ़ रहा है ताप

स्वाति सक्सेना

धरती का बढ़ रहा है ताप
भोग रहे सब लोग संताप
काटे पेड़ , हरीतिमा उजाड़े
हरियाली के दृश्य बिगाड़े
उजड़ गए सुंदर वन उपवन,
जहाँ गूंजता पक्षी कलरव
नाश हुई पारिस्थिकी प्रकृति की
फिर क्यों लगी रखें अच्छी आश।
इस गर्मी की तपन–उमस से,
कैसे बच पाएँ संकट से?

अंधाधुंध हो रहा है दोहन
कटते घटते जंगल उपवन।
जिसने दिया छाँव औ आश्रय
उसी को काटा जीवन छीना
वन, नदियाँ जल जंगल बिगड़े
स्वार्थ में डूबे अगड़े–पिछड़े।
अब प्रकृति दे रही संदेश
बढ़ती गर्मी जो हो देश
यदि अभी भी न संभला भाई
मुश्किल होगा जीना भाई।

जाग समय को ले पहचान
मत कर दोहन जहाँ –तहाँ
वरना तेरा नाश ही होगा
संकट अबकी खास ही होगा ।
ढूँढ़ रहा है तू जो हरियाली
शीतल छाँव , ठंढ,खुशहाली
तू न वापस ला पाएगा
कर्मों का पूरा हिसाब चुकाएगा।

आर.डी.एस.एच. नेशनल कालेज, मुम्बई
ईमेलः swati.anubhav@gmail.com

कृषि

संकर धान उत्पादन प्रमुख बाधाएं एवं रणनीतियां

शालिनी गुप्ता एवं आर.एस.सेंगर

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है। हमारे देश, प्रदेश में आजीविका का प्रमुख साघन कृषि है। धान विश्व की तीन महत्वपूर्ण खाद्यान फसलों मे से एक है, जोकि 2.7 बिलियन लोगों का मुख्य भोजन है। इसकी खेती विश्व में लगभग 150 मिलियन हेक्टेयर एवं एशिया में 135 मिलियन हेक्टेयर में कि जाती है। भारतवर्ष में लगभग 44 मिलियन हेक्टेयर में धान की खेती विभिन्न परिस्थितियों सिंचित, असिंचित, जल प्लावित, असिंचित, उसरीली एवं बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में की जाती है। विभिन्न परिस्थितियों अर्थात् अनुकूल सिंचित एवं विषम परिस्थितियों हेतु धान की उच्च उत्पादकता वाली संकर प्रजातियों के विकास पर बल दिए जाने की आवश्यकता है। सर्वप्रथम संकर प्रजातियों के विकास का कार्यक्रम चीन में वर्ष 1964 में आरम्भ हुआ। पिछले 20 वर्षों से अथक प्रयासों के उपरान्त विकसित संकर प्रजातियों से सामान्य प्रजातियों के सापेक्ष 15.2 प्रतिशत अधिक उत्पादन प्राप्त हो रहा है। क्योंकि इनमें उपलब्ध संकर ओज एवं प्रभावी जड़तंत्र, सूखा एवं मृदा लवणता के प्रति मध्यम स्तर का अवरोधी होता है। संकर प्रजातियों से कृषक कम क्षेत्रफल में सीमित संसाधनों से सफल विविधीकरण द्वारा आच्छादित है।

संकर किस्में दो विभिन्न आनुवांशिक गुणों वाली प्रजातियों के नर एवं मादा के संयोग ६ संसर्ग ६ संकरण से विकसित की जाती है, इनमें पहली पीढ़ी का ही बीज नई किस्म के रूप में प्रयोग किया जाता है क्योंकि पहली पीढ़ी में एक विलक्षण ओज क्षमता पायी जाती है, जो सर्वोत्तम सामान्य किस्मों की तुलना में अधिक उपज देने में सक्षम होती है, ध्यान रहे कि अगली पीढ़ी में उनके संकलित गुण विघटित हो जाने के कारण ओज क्षमता में बहुत ह्रास होता है, तथा पैदावार कम हो जाती है। परिणमतः संकर बीज किसानों को हर साल खरीदना पड़ता है।

संकर धान की प्रमुख प्रभेद

पी एच बी 71– इसका दाना सीचिंत लम्बा, पकने की अवधि 135 से 140 दिन, मध्यम सीचिंत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त एवं औसत पैदावार 75 से 80 क्विंटल प्रति हेक्टेयर है।

के आर एच 2– इसका दाना लम्बा, पकने की अवधि 135 से 140 दिन, मध्यम सीचिंत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त एवं औसत पैदावार 70 से 75 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होता है।

एराईज 6444– इसका दाना लम्बा, पकने की अवधि 135 से 140 दिन, मध्यम सीचिंत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त एवं औसत पैदावार 80 से 90 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होता है।

पूसा आर एच 10 (सुगंधित)–इसका दाना लम्बा पतला, पकने की अवधी 115 से 120 दिन मध्यम सीचिंत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त एवं औसत पैदावार 60 से 65 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होता है।

एराईज 6201–इसका दाना लम्बा पतला, पकने की अवधी 125 से 130 दिन, मध्यम सीचिंत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त एवं औसत पैदावार 60 से 70 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होता है।

ईण्डाम 100001–इसका दाना लम्बा पतला, पकने की अवधि 115 से 120 दिन, मध्यम सीचिंत क्षेत्रों के लिए उपयुक्त एवं औसत पैदावार 55 से 60 क्विंटल प्रति हेक्टेयर होता है।

संकर धान की खेती में सावधानियां

संकर धान का बीज एक ही फसल उत्पादन के लिए प्रयोग में लाया जाता है। संकर धान की फसल से प्राप्त बीज को दूसरे वर्ष इसलिए नही प्रयोग में लाया जात है। क्योंकि दूसरे वर्ष इसकी पैदावार पहले की अपेक्षा कम हो जाती है। दूसरे साल प्रति बाली दानों की संख्या में कमी भी हो जाती हैं, परिणाम स्वरूप उपज में कमी आ जाती हैं। चूंकि संकर धान की उत्तम खेती हेतु मात्र 15 18 किग्रा. बीजध्हेक्टेयर प्रयोग किया जाता है। अतः नर्सरी प्रबन्धन नितान्त आवश्यक है।

संकर धान के विकास में बाधाएं प्रौद्योगिकी बाधाएं

देश में संकर धान के प्रजनन में बहुत अच्छी प्रगति के बावजूद अभी भी कई मुद्दों का समाधान किया जाना है। जैसे की–

सीमांत विषमताः उच्च उत्पादक धान उगाने वाले राज्यों में उच्च उपज वाली अंतरजातीय किस्मों पर संकर का उपज लाभ केवल 10–15 प्रतिशत तक होता है जो कि कृषक समुदाय के लिए आर्थिक रूप से आकर्षक नहीं है।

संकीर्ण आनुवंशिक आधारः सभी जारी संकर एकल साइटोप्लाज्मिक स्त्रोत पर आधारित है जो किसी भी बड़े जैविक तनाव के प्रकोप के लिए प्रवण हो सकते हैं।

प्रोफेसर राकेश सिंह सेंगर और डा0 शालिनी गुप्ता, पादप जैव प्रौद्योगिकी संभाग, जैव प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, सरदार वल्लभभाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय। मेरठ, यू.पी.–250110 में कार्यरत है।
ईमेलः sengarbiotech7@gmail.com, sengar065@gmail.com

विविध उपभोक्ता वरीयताएं: भारत में अनाज की गुणवत्ता की प्राथमिकताएं अत्यधिक क्षेत्र–विशिष्ट है, और विविध की गुणवत्ता आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संकर विकसित करना एक कठिन काम है।

विलम्ब अवधि में बहुत कम संकर और प्रतिकूल पारिस्थितिकी के लिए संकरों का सीमित विकल्प: तटीय क्षेत्रों के लिए लंबी अवधि के संकर क्षेत्र, बोरो पारिस्थिकी और लवणीय क्षारीय मिट्टी के लिए उपयुक्त संकर उपलब्ध नहीं है।

प्रमुख कीटों के लिए पैतृक वंश की संवेदनशीलता: पैतृक वंश और संकर प्रमुख जैविक तनावों और फाल्स स्मट जैसी छोटी बीमारियों के लिए अतिसंवेदनशील होते हैं जो संकर धान की खेती के लिए एक बड़ा खतरा बन सकता है।

सामाजिक और आर्थिक बाधाएं

उच्च बीज लागत बड़े पैमाने पर अपनाने के लिए एक प्रमुख बाधा है, और इसलिए बीज लागत को कम करने के लिए संकर धान बीज उत्पादन में बीज की उपज बढ़ानें की आवश्यकता है। कम बाजार मूल्य की पेशकश और मिल मालिकों/व्यापारियों द्वारा संकर धान की उपज के खिलाफ भेदभाव कई किसानों के लिए संकर धान की खेती करने के लिए एक निवारक के रूप में कार्य कर रहा है। संकरों के खिलाफ मूल्य भेदभाव का कारण धान की कम प्रतिशतता की आशंका है। सार्वजनिक नस्ल के संकरों के गुणवत्तापूर्ण बीजों के उत्पादन और आपूर्ति के लिए मजबूत संस्थागत तंत्र का अभाव और बड़े संकर धान चावल बीज उत्पादन में सार्वजनिक क्षेत्र के बीज निगमों की भागीदारी न्यूनतम रही है। हाल के वर्षों में सार्वजनिक क्षेत्र के अनुसंधान के लिए अपर्याप्त धन सहायता भी हाइब्रिड धान अनुसंधान में धीमी प्रगति के कारणों में से एक है।

नीतिगत बाधाएं

संकर बीज लागत पर कोई एक समान सब्सिडी घटक नहीं है, जो अलग–अलग राज्यों में भिन्न होता है। असूचित संकर अकेले बीज लागत पर सब्सिडी के लिए पात्र है, निजी क्षेत्र से कई अच्छे, सत्य लेबल वाले संकरों को अपनाने को प्रतिबंधित है। नए संकरों को लोकप्रिय बनाने के लिए केंद्रित विस्तार रणनीति का अभाव है।

संकर धान के विकास को बढ़ावा देने के लिए प्रमुख रणनीतियां अनुसंधान रणनीतियां

संकर धान के विकास पर अनुसंधान प्रयासों को तेज करने के लिए पर एक विस्तारित नेटवर्क परियोजना लागू किया जाना चाहिए। मुख्यतः पैतृक वंश के विकास जो अत्यधिक विशम संकर धान पैदा कर सकता है। हेटेरोटीक जीन पूल का विकास संकर धान के विकास में तलाशने की जरूरत है। सीएमएस स्त्रोतों का विविधीकरण:– संकर बीज उत्पादन के लिए उपयुक्त वैकल्पिक स्त्रोतों की पहचान और–एक्सपोजर दौरों और प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से मानव संसाधन विकसित करने के आवश्यकता पर ध्यान देना होगा।

बीज उत्पादन रणनीतियां

बीज की पैदावार बढ़ाने के लिए बीज उत्पादन तकनीक को परिष्कृत करने की आवश्यकता है, ताकि संकर धान के बीज की लागत को कम किया जा सके। सार्वजनिक क्षेत्र में बीज एजेंसियों गैर सरकारी संगठनों, और किसान सहकारी समितियों के साथ–साथ निजी बीज क्षेत्र की भागीदारी से आने वाले वर्षों में संकर बीज की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए अपना सर्वश्रेष्ठ प्रयास कर रही है, ब्रीडर, फाउंडेशन और प्रमाणित बीज के उत्पादन और आपूर्ति के लिए मौजूदा संस्थागत तंत्र को मजबूत करना होगा। राष्ट्रीय बीज निगम और राज्य बीज निगमों को आपूर्ति के लिए मौजूदा संस्थागत तंत्र को मजबूत करने की आवश्कता है।

प्रौद्योगिकी हस्तांतरण रणनीतियां

संकर धान प्रौद्योगिकी का अनुसंधान केन्द्रों से किसानों के खेत में स्थानांतरण उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि संकर विकसित करना। विस्तार एजेंसियों को विभिन्न नवीन रणनीतियों के माध्यम से संकर धान की खेती के लाभों के बारे में किसानों के बीच आवश्यक जागरूकता पैदा करने में अधिक भूमिका निभाने की आवश्यकता है।

नीतिगत विकल्प

देश में संकर धान अनुसंधान और विकास के लिए पर्याप्त विता पोषण सहायता और मानव संसाधन प्रदान करने पर अधिक बल दिए जाने की आवश्यकता है। देश के विभिन्न हिस्सों में संकर धान की खेती से जुड़े अनुबंध कृषि मॉडल को प्रोत्साहित करना होगा और प्रौद्योगिकी को लोकप्रिय बनाने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के

बीच एक मजबूत इंटरफेस प्रदान करना होगा।

अतः नई पीढ़ी के संकर धान पहले से उपलब्ध कई कमियों से रहित हैं और कई पाइपलाइन में हैं। नई पौधों की किस्मों की बनाने की आवश्यकता है। संकर धान के अनुसंधान और विकास में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ाने के पक्ष में सार्वजनिक नीति हाइब्रिड प्रौद्योगिकी को अपनाने के लिए तेजी से प्रगतिशील कृषक समुदाय गुणवत्ता वाले बीज का उत्पादन और आपूर्ति करने की सिद्ध क्षमता के साथ बड़े और जीवंत बीज उधोग को लगाने की आवश्यकता है, साथ–साथ अधिसूचित संकर धान के लिए बीज लागत पर सब्सिडी की व्यवस्था होनी चाहिए।

संस्कृत लघु कथा

वसुधैव कुटुम्बकम

गणेश शंकर बाजपेयी

एकस्मिन् कस्बे द्वौ परिवारौ स्तःकृ संकीर्णनाथः तथा दयानाथः।

संकीर्णनाथः अत्यन्तः धनवान

आसीत किन्तु स्वभावेन स्वार्थी आसीत् सः सदा वदति स्मकृ

"स्वपरिवारस्य अतिरिक्तं कस्यापि सहायता न कर्तव्या।"

दयानाथः तु साधारणः व्यापारी आसीत् किन्तु तस्य हृदयं विशालम् आसीत् तस्य आपणे यः कश्चित् आगच्छति स्म, सः तेन सह प्रेम्णा भाषते स्म। यदि कश्चित् बुभुक्षितः भवेत् तर्हि सः तस्मै भोजनं ददाति स्म। यदि कश्चित् यात्री भवेत तर्हि तस्मै निवासस्य स्थानं ददाति स्म।

एकदा अन्यनगरात् एकः अपरिचितः युवकः आगतः। तस्य समीपे न धनम् आसीत न च निवासस्थानम् संकीर्णनाथः तं स्वआपणात् निष्कासितवान। किन्तु दयानाथः तं स्वगृहं नीतवान् भोजनं दत्तवान विश्रामार्थं स्थानं च दत्तवान।

कतिपयदिनानन्तरं ज्ञातं यत् सः युवकः राज्ञः मन्त्री आसीत् सः वेशं परिवर्त्य जनानां स्वभावं ज्ञातुं निर्गतः आसीत् सः सर्वं वृत्तान्तं राज्ञे अकथयत्

राजा दयानाथं दरबारं आहूय सम्मानितवान् तथा उक्तवान्कृ

"यस्य कृते समग्रा पृथ्वी एव परिवारः अस्ति, स एव सच्चः मनुष्यः।"

ततः मन्त्री एतत् श्लोकं अपठत्कृ

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

तस्मिन् दिने नगरस्य जनानां विचारः परिवर्तितः। ते अवगच्छन् यत् केवलं स्वजनानां प्रति प्रेम महानता नास्ति, अपि तु सर्वान् स्वकीयवत् मन्यमानः एव उदारः भवति।

अस्वीकरण (Disclaimer):
यह कहानी केवल शिक्षा और नैतिक संदेश देने के उद्देश्य से लिखी गई एक काल्पनिक रचना है। इसमें प्रयुक्त पात्र, स्थान और घटनाएँ काल्पनिक हैं। कहानी का उद्देश्य "वसुधैव कुटुम्बकम" अर्थात् समस्त विश्व को एक परिवार मानने की भावना को प्रोत्साहित करना है।

सेक्टर–3, उद्यान–2, एल्डिको, रायबरेली रोड, लखनऊ
ईमेलः gsbajpai1591963@gmail.com

कृषि

गेहूं की फसल में उच्च ताप का तनाव प्रभाव और प्रबंधन

अंकित तिवारी[1], जगन्नाथ पाठक[2], शिवम सिंह[3] एवं अवधेश कुमार त्रिपाठी[4]

सार

गेहूँ भारत की प्रमुख खाद्य फसल है, जो करोड़ों लोगों के पोषण का आधार है। वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में निरंतर वृद्धि देखी जा रही है, जिससे गेहूँ की उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। विशेषकर फसल की प्रजनन अवस्था तथा दाना भरने की अवस्था में अधिक तापमान होने से ऊष्मा तनाव उत्पन्न होता है, जिससे प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है, कोशिकीय क्षति होती है तथा दानों का आकार और वजन कम हो जाता है। ऊष्मा तनाव के कारण फसल की परिपक्वता अवधि घट जाती है और अंततः कुल उपज में 20 से 40 प्रतिशत तक की गिरावट देखी जा सकती है। अतः गेहूँ उत्पादन को स्थिर बनाए रखने हेतु ऊष्मा तनाव प्रबंधन की वैज्ञानिक रणनीतियाँ अपनाना अत्यंत आवश्यक है। कुछ कृषि प्रबंधन पद्धतियों में बदलाव करके ऊष्मा तनाव के प्रभावों, उसके कारणों तथा विभिन्न प्रबंधन उपायों जैसे समय पर बुवाई, सहिष्णु किस्मों का चयन, सिंचाई, पोषण प्रबंधन, मल्चिंग एवं आधुनिक तकनीकों की भूमिका है।

मुख्य शब्द : गेहूँ, ऊष्मा तनाव, जलवायु परिवर्तन, तापमान, उपज, प्रबंधन

परिचय

भारत एक कृषि प्रधान देश है और गेहूँ यहाँ की प्रमुख रबी फसलों में से एक है। यह फसल मुख्यतः उत्तर भारत के राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, मध्य प्रदेश, राजस्थान एवं बिहार में व्यापक रूप से उगाई जाती है। गेहूँ न केवल ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है बल्कि इसमें प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट एवं खनिज तत्व भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं। देश की बढ़ती जनसंख्या के कारण गेहूँ की मांग निरंतर बढ़ रही है, परंतु जलवायु परिवर्तन ने इसके उत्पादन को गंभीर चुनौती दी है।

हाल के दशकों में वैश्विक तापमान में वृद्धि हुई है, जिसके कारण गेहूँ की फसल अधिक बार ऊष्मा तनाव का सामना कर रही है। ऊष्मा तनाव वह स्थिति है जब तापमान पौधे की अनुकूल सीमा से अधिक हो जाता है और उसकी सामान्य वृद्धि एवं विकास बाधित हो जाते हैं। अधिक तापमान पर पौधों की शारीरिक क्रियाएँ प्रभावित होने लगती हैं। विशेष रूप से दाना भरने की अवस्था में अधिक तापमान होने से फसल शीघ्र पक जाती है, जिससे दानों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता। ऊष्मा तनाव के कारण पत्तियों में क्लोरोफिल की मात्रा घट जाती है, प्रकाश संश्लेषण की दर कम हो जाती है तथा श्वसन की दर बढ़ जाती है। इसके परिणामस्वरूप पौधे की ऊर्जा खपत बढ़ जाती है और उत्पादन क्षमता घट जाती है। शोधों से यह सिद्ध हुआ है कि यदि गेहूँ को दाना भरने की अवस्था में लगातार 3 से 4 दिन तक 35° सेल्सियस से अधिक तापमान मिलता है, तो उपज में 30 प्रतिशत तक की कमी आ सकती है

ऊष्मा तनाव प्रतिकूल प्रमुख प्रभाव

1. पत्तियों का समय से पहले सूखना

[1]सहायक प्रोफेसर एवं सह कनिष्ठ वैज्ञानिक सस्य विज्ञान विभाग–बिरसा कृषि विश्वविद्यालय (तिलका मांझी कृषि महाविद्यालय, गोड्डा)

[2]मृदा विज्ञान विभाग–बांदा कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय, बांदा, उत्तर प्रदेश

[3]विषय वस्तु विशेषज्ञ, कृषि विज्ञान केंद्र, बरासिन, सुल्तानपुर–II, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय कुमारगंज

[4]एसोसिएट प्रोफेसर, सस्य विज्ञान विभाग, बांदा कृषि एवं प्रोद्योगिक विश्वविद्यालय, बांदा, उत्तर प्रदेश

ईमेलः shivambuat@gmail.com

एवं झुलसना।

2. प्रकाश संश्लेषण की क्षमता में कमी।
3. दानों का आकार छोटा रह जाना।
4. हजार दानों के वजन में कमी।
5. दानों की गुणवत्ता, विशेषकर प्रोटीन की मात्रा में गिरावट।
6. फसल अवधि का छोटा हो जाना, जिससे जैविक पदार्थ का संचय कम हो जाता है।

ऊष्मा तनाव प्रबंधन के उपाय

1. समय पर बुवाई

ऊष्मा तनाव से बचाव का सबसे प्रभावी उपाय समय पर बुवाई है। उत्तर भारत में गेहूँ की बुवाई 15 से 30 नवम्बर के बीच करना उपयुक्त माना जाता है। इससे फसल का दाना भरने का समय फरवरी के अंत या मार्च के प्रारंभ में आ जाता है, जब तापमान अपेक्षाकृत अनुकूल होता है। देर से बुवाई करने पर फसल मार्च–अप्रैल की तेज गर्मी में आ जाती है, जिससे ऊष्मा तनाव का खतरा बढ़ जाता है।

2. सहिष्णु किस्मों का चयन

ऊष्मा सहनशील किस्में ऊष्मा तनाव को काफी हद तक सहन कर सकती हैं। भारत में विकसित कुछ प्रमुख ऊष्मा सहिष्णु किस्में हैं पूसा तेजस, पूसा गौतमी, करण वंदना, डब्ल्यूएच 1105 आदि। इन किस्मों में पत्तियों की संरचना ऐसी होती है कि वे अधिक तापमान में भी प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को कुछ हद तक बनाए रखती हैं।

3. सिंचाई प्रबंधन

ऊष्मा तनाव को कम करने में सिंचाई की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। समय पर सिंचाई देने से मिट्टी में नमी बनी रहती है और पौधों का तापमान नियंत्रित रहता है। विशेष रूप से कल्ले निकलने, बालियाँ निकलने और दाना भरने की अवस्थाओं पर सिंचाई अनिवार्य है। स्प्रिंकलर या ड्रिप सिंचाई से भी फसल के चारों ओर सूक्ष्म जलवायु अनुकूल बनाई जा सकती है। महत्वपूर्ण चरणों पर सिंचाई करें, विशेष रूप से फूल आने के पहले और दाना भरने के समय हल्की सिंचाई से मिट्टी का तापमान कम किया जा सकता है, जिससे हीट स्ट्रेस को कम करने में मदद मिलेगी। गेहूं में दाना भरने की दर और अवधि, और दाने के आकार को बनाए रखने के लिए पानी की निरंतर आपूर्ति आवश्यक है। वर्षा आधारित गेहूं उगाने वाले क्षेत्र में यह संभव नहीं हो सकता है, लेकिन यहां मिट्टी प्रणाली में इष्टतम नमी और तापीय व्यवस्था बनाए रखने के लिए मल्चिंग सबसे अच्छा विकल्प हो सकता है। मल्च मिट्टी के वाष्पीकरण को कम करके मिट्टी की नमी को संरक्षित करता है

4. पोषण प्रबंधन

संतुलित उर्वरक प्रयोग से पौधों की सहनशीलता बढ़ती है। नाइट्रोजन, फस्फोरस और पोटाश का उचित अनुपात पौधों की वृद्धि को संतुलित रखता है। इसके अतिरिक्त जिंक, बोरोन और सल्फर जैसे सूक्ष्म तत्वों का प्रयोग भी ऊष्मा तनाव सहनशीलता में सहायक होता है। उच्च तापमान तनाव के संपर्क में आने वाले पौधों में खनिज पोषक तत्वों की पर्याप्त और संतुलित आपूर्ति आवश्यक है, जब दिन और रात का तापमान क्रमशः 24 और 17 डिग्री सेल्सियस रहता है, तो फूल आने के बाद नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटेशियम का प्रयोग अनाज प्रोटीन को समृद्ध करता है, लेकिन दिन और रात का तापमान अधिक होने पर प्रभाव शून्य हो जाता है। पोषक तत्वों का पत्तियों पर छिड़काव बहुत प्रभावी है और गेहूं पर गर्मी के तनाव के प्रतिकूल प्रभाव को कम करने के लिए फूल आने की अवस्था पर पोटैशियम नाइट्रेट का 0.5 प्रतिशत की दर से छिड़काव गेहूं की गर्मी सहनशीलता को बढ़ाने के लिए लाभकारी हो सकता है। पोटैशियम नाइट्रेट गर्मी के तनाव से प्रेरित पत्ती जीर्णता में देरी का कारण बनता है और अनाज की उपज को बढ़ाता है। कैल्शियम का बहिर्जात अनुप्रयोग पौधों में उच्च तापमान सहनशीलता को बढ़ावा देता हैं।

5. मल्चिंग एवं फसल अवशेष प्रबंधन

मल्चिंग द्वारा मिट्टी की सतह ढकी रहती है, जिससे वाष्पीकरण कम होता है और मिट्टी का तापमान नियंत्रित रहता है। गेहूँ के खेत में भूसा, पराली या अन्य

जैविक पदार्थों से मल्चिंग करने से ऊष्मा तनाव के प्रभाव को काफी हद तक कम किया जा सकता है।

6. जैविक एवं आधुनिक तकनीकें

हाल के वर्षों में जैविक उत्पाद जैसे सीवीड एक्सट्रैक्ट, ह्यूमिक एसिड एवं बायो–स्टिमुलेंट्स का प्रयोग भी ऊष्मा तनाव प्रबंधन में सहायक सिद्ध हुआ है। ये पदार्थ पौधों की एंटीऑक्सीडेंट प्रणाली को सक्रिय करते हैं, जिससे कोशिकीय क्षति कम होती है।

निष्कर्ष

वर्तमान समय में जलवायु परिवर्तन के कारण ऊष्मा तनाव, गेहूँ उत्पादन के लिए एक गंभीर चुनौती बन चुका है, जो भविष्य में और अधिक तीव्र हो सकती है। जलवायु परिवर्तन के वर्तमान परिदृश्य में यह आवश्यक हो गया है कि किसान वैज्ञानिक पद्धतियों को अपनाकर फसल प्रबंधन करें। समय पर बुवाई, सहिष्णु किस्मों का चयन, संतुलित पोषण, उचित सिंचाई, मल्चिंग तथा आधुनिक जैविक तकनीकों के समन्वित प्रयोग से ऊष्मा तनाव के दुष्प्रभावों को काफी हद तक कम किया जा सकता है। यदि इन उपायों को सही ढंग से अपनाया जाए, तो गेहूँ की उपज और गुणवत्ता दोनों को बनाए रखते हुए देश की खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सकता है।

हिन्दी कविता

शक्ति का रूप–नारी

वाय सी झाला

इस सृष्टि की नींव दो नामों से गढ़ी,
स्त्री और पुरुष – दो सुर, एक ही धुन।
एक के बिना दूसरा अधूरा है यारों,
जैसे चाँद बिना रात, जैसे बिना गीत सुर।
पर जब गहराई में झाँक कर देखो,
तो स्त्री केवल देह नहीं, प्रकृति का रूप है।
संवेदना की नदी, करुणा का सागर,
सहनशीलता की धरती, सृजन का भूप है।
जैसे धरती हर बीज को सीने से लगाती,
जीवन का अंकुर फोड़ आकाश दिखाती।
वैसे ही नारी पुरुष की ऊर्जा समेटे,
नए जीवन को गर्भ में मुस्कान सजाती।
उसके भीतर समाए हैं लाख तूफान,
फिर भी चेहरे पर शांति का सागर ठहरा।
यही है उसकी अनकही शक्ति का राज,
जो पुरुष की समझ से अक्सर परे ठहरा।
पुरुष तो बाहर की दुनिया में भटके,
संघर्ष, लक्ष्य, विश्लेषण में खोया रहे।
पर उसकी चेतना पर छाई है अक्सर,
वासना की दीवार, जो आगे न होने दे।
वह दीवार ही रोकती है उसे देखने से,
नारी का वह दिव्य, अलौकिक रूप।
वह देखता है शरीर को, पर न देख सका,
आत्मा में बसती करुणा का अनूप।
हे पुरुष! यदि देखना है शक्ति का रूप,
तो अपनी चेतना को तू शुद्ध कर ले।
वासना की दीवार गिरा दे एक दिन,
नारी को सम्पूर्णता में तू पढ़ कर ले।
तब समझेगा तू उसका मूल्य अनमोल,
उसकी सहनशीलता, उसका मौन तप।
ऋषि–मुनियों ने यूँ ही न कहा उसे शक्ति,
वह जीवन देती है, देती है जीवन का पथ।
आज दुनिया में सम्मान उसका बन गया,
सिर्फ भाषण, नारे, कागज का प्रश्न।
पर गहराई में पूछो अपने मन से,
क्या पहचाना तुमने उसका चेतन दर्शन?
क्या उसे देखा तुमने सिर्फ बेटी, बहन, पत्नी में,
या देखा तुमने उसमें ब्रह्मांड का सार?
सम्मान मिलेगा तब, जब टूटेंगी दीवारें,
जब देखोगे उसमें सृष्टि का आधार।
स्त्री और पुरुष हैं एक–दूसरे के पूरक,
पुरुष बाह्य शक्ति, स्त्री अंतर की ज्योति।
जब तक न समझोगे इस संतुलन का मोल,
अधूरा रहेगा सृष्टि का स्रोत, अधूरी प्रगति।
नारी केवल जननी नहीं, चेतना की धारा है,
वह सृजन की देवी, करुणा की मूर्ति है।
जब तक न तोड़ेगा पुरुष अपनी दीवारें,
उसके सामने खड़ी शक्ति अदृश्य रहेगी।
तो आओ, आँखें खोलो, हृदय को शुद्ध करो,
देखो नारी में बसी सृष्टि की ज्योति।
यही है संतुलन, यही है सत्य सनातन,
स्त्री में बसी है सृष्टि की सम्पूर्ण शोभा।

1B राजवी पार्क, विद्या डेरी के सामने, आणंद, गुजरात–388001
ईमेलः yczala@yahoo.co.in

कृषि

भारत में रासायनिक खादों के इस्तेमाल की क्षमता में सुधार

नंदुला रघुराम

हम जितना ज्यादा फर्टिलाइजर इस्तेमाल करते हैं, वे मिट्टी के कार्बनिक पदार्थ, पानी और पोषक तत्वों को सोखने की फसलों को क्षमता उतना ही कम करते हैं, जिससे फसल की पैदावार के कम होने का खतरा होता है। जिस कारण किसान और ज्यादा खाद डालने के लिए मजबूर हो जाते हैं।

'हालांकि सरकार किसानों के लिए फर्टिलाइजर की कीमतें कम रखने के लिए सब्सिडी बढ़ा रही है, लेकिन सालाना सब्सिडी पर खर्च होने वाले रू0 2 लाख करोड़ का दो–तिहाई से ज़्यादा हिस्सा खाने के तौर पर नहीं इस्तेमाल हो पाता और प्रदूषण में बर्बाद हो जाता है।'

गेहूं और गन्ने के वैश्विक निर्यात में हमारा 4 प्रतिशत हिस्सा है। देश को अनाज से बने बायोएथेनॉल को कम करना होगा और जमीन, पानी, फर्टिलाइजर और सब्सिडी के लिए खाने और ईंधन के बीच मुकाबले को रोकने के लिए सिर्फ मोलेसेस या बेकार बायोमास को फर्मेंट करने की इजाजत देनी होगी। फर्टिलाइजर के आविष्कार से पहले हजारों सालों तक दाल–अनाज के रोटेशन ने खेती को बनाए रखा, क्योंकि ज़्यादातर दालें अगली फसल के लिए मिट्टी में कुछ फिक्स्ड नाइट्रोजन छोड़ देती हैं। सोयाबीन ही एकमात्र ऐसी दाल है जिसका प्रोडक्शन कम यूरिया के साथ भी काफी बढ़ा, लेकिन यह अगली फसल के लिए कोई फिक्स्ड नाइट्रोजन नहीं छोड़ती। भारत को दाल/दाल–आधारित फसल रोटेशन या बहुफसली खेती को बढ़ावा देना चाहिए, क्योंकि दालें हवा में मौजूद नाइट्रोजन को स्थिर करती हैं, और उन्हें यूरिया की जरूरत नहीं होती या अनाज के लिए इस्तेमाल होने वाले यूरिया का सिर्फ 10 प्रतिशत ही चाहिए होता है। वे बारिश पर निर्भर इलाकों के लिए भी बहुत अच्छे हैं, जहाँ मॉनसून की कमी होती है (जैसा कि इस साल अनुमान है)। इसके अलावा, भारत को अपने पुराने प्रोटीन कुपोषण को दूर करने के लिए दालों की बहुत जरूरत है। भारत में दुनिया की सबसे बड़ी शाकाहारी आबादी है जो प्रोटीन के लिए दालों पर निर्भर है। फिर भी, अनाज पर आधारित नीतियों के कारण दालों की कमी हो गई है, क्योंकि उनकी खेती कम हो गई है, रुक गई है, या कम जमीन पर चली गई है, जिससे पैदावार पर असर पड़ा है। तेलंगाना में राज्य बनने के बाद से दालों का उत्पादन आधा हो गया है। आज देश अपनी दालों का लगभग 20 प्रतिशत आयात करता है। चावल के 20 प्रतिशत हिस्से को दालों में बदलने से यूरिया, पानी और कुपोषण से बचा जा सकता है। अक्टूबर 2025 में शुरू किए गए दलहन आत्मनिर्भरता मिशन में चार साल तक MSP पर तुअर, उड़द और मसूर की 100 प्रतिशत खरीद का वादा किया गया था। इसके तहत, खेती के रकबे को बढ़ाकर पांच साल में उत्पादन को 350 लाख टन प्रति वर्ष तक बढ़ाने के लिए रू0 11,440 करोड़ दिए गए थे। लेकिन सरकार के अप्रैल 2026 के डेटा के मुताबिक, पिछले साल के मुकाबले दालों की बुआई का एरिया सिर्फ 1.26 प्रतिशत बढ़ा है। यह 2021–22 से 2024–25 के बीच एरिया में आई 10 प्रतिशत की गिरावट के मुकाबले बहुत कम है। मूंगफली की बुआई सिर्फ 1.3ः बढ़ी, जिससे पता चलता है कि दालों वाले तिलहन की हालत भी कुछ बेहतर नहीं है। इसे बेहतर तरीके से लागू करने की जरूरत है, जैसा कि सुप्रीम कोर्ट ने मार्च में संस्तुत किया था। प्राकृतिक खेती की क्षमता बढ़ाने के लिए भारत को खाद, कम्पोस्ट और बायोचार (बायोगैस प्लांट से बचा हुआ) की रीसाइक्लिंग को भी तीन गुना करना होगा ताकि फर्टिलाइजर की जगह मिट्टी की हेल्थ को बेहतर बनाया जा सके। फर्टिलाइजर रिकमेंडेशन को बदलने की जरूरत है ताकि यह पक्का हो सके कि ऑर्गेनिक्स बेसल डोज बनें और फर्टिलाइजर का इस्तेमाल सिर्फ लोकल लेवल पर मौजूद सभी ऑर्गेनिक सोर्स खत्म होने के बाद किसी भी कमी को पूरा करने के लिए टॉप–अप के तौर पर किया जाए। पूरे भारत में कोऑर्डिनेटेड फसल ट्रायल से पता चला है कि फर्टिलाइजर की बताई गई डोज में से आधी तक को खाद, बायोचार या कम्पोस्ट से बदला जा सकता है, जिससे फसल की पैदावार में कोई नुकसान नहीं होता है। फसल को बेहतर बनाने के लिए अच्छे नाइट्रोजनध्फॉस्फोरस सोर्स के विकल्पों में भी इन्वेस्टमेंट होना चाहिए। किसान को एक बेहतर लेकिन मौजूदा वैरायटी अपनाने की जरूरत है – न कि ज़्यादा पैसे खर्च करने वाली टेक्नोलॉजी या ड्रोन की। भारत की अपनी रिसर्च से पता चलता है, कि अकेले चावल के जर्मप्लाज्म में, सप्लाई की गई प्रति यूनिट यूरिया से अनाज की पैदावार के मामले में, नाइट्रोजन इस्तेमाल की क्षमता को दोगुना करने की क्षमता है। इंटर–सेक्टरल कोऑर्डिनेशन पक्का करने के लिए जरूरी है।

भारत अपनी यूरिया की जरूरत का 80 प्रतिशत देश में ही पूरा करता है और बाकी आयात करता है, साथ ही पूरी तरह से आत्मनिर्भर बनने के लिए देश में उत्पादन क्षमता भी बढ़ा रहा है। लेकिन भारत की यूरिया इंडस्ट्री आयातित ईंधन पर बहुत ज्यादा निर्भर है। सोलर एनर्जी का इस्तेमाल करके पानी के इलेक्ट्रोलिसिस से बनने वाला ग्रीन अमोनिया एक ऑप्शन है, लेकिन यह पानी की कमी वाले इलाकों में धारणीय नहीं है। फॉस्फेटिक फर्टिलाइजर के लिए स्थिति और भी खराब है, क्योंकि भारत में मिनरल रॉक फॉस्फेट की कमी है और इसलिए उसे ऐसे फर्टिलाइजर लगभग पूरी तरह से इम्पोर्ट करने पड़ते हैं।

Professor and Head, Centre for Sustainable nitrogen and nutrient management, School of Biotechnology, Guru Gobind Singh Indraprastha University, and President, Sustainable India Trust, New Delhi, Adjunct Professor of Plant Science, School of Life Science, University of Hyderabad.
ईमेलः raghuram@ipu.ac.in

भाषा

एक उपेक्षित भाषा और संस्कृति की पुनर्स्थापना के प्रयास

नरसिंह

भोजपुरी भारत की एक तिहाई जनसंख्या द्वारा बोली जाने वाली भाषा है। लगभग 25 करोड़ लोगों की समृद्ध भाषा लम्बे समय से उपेक्षा की शिकार है। नेपाल मारिशस जैसे 14 देश में भोजपुरी को एक भाषा के रूप में मान्यता प्राप्त है। पर भारत में इसके लिए कुछ समूहों द्वारा अभी भी प्रयास किए जा रहे हैं , पर सफलता हाथ नहीं लग रही है ।

भारत के पढ़े–लिखे लोगों का एक समूह भोजपुरी भाषा को बोली कहने से नहीं थकता। भोजपुरी भाषा के प्रति यह भावना, अवधारणा, पूर्णतया भ्रांतिमय तथा अव्यावहारिक और अन्याय पूर्ण रवैया है। इस प्रकार का संघर्ष भारत की कुछ अन्य भाषाएँ भी कर रही हैं। यह बात तथ्य संगत है, कि प्राकृत भाषा से जिन छः भाषा समूहों की उत्पत्ति हुई इसी से भारत की अधिकांश भाषाओं की उत्पत्ति हुई है। इन्हीं भाषा समूहों का एक भाषा समूह मागधी प्राकृत है। मागधी प्राकृत का एक नाम पाली भी है। मागधी प्राकृत की दो बेटियाँ हैं पूर्व अर्द्धमागधी प्राकृत और पश्चिमी अर्द्धमागधी प्राकृत। पश्चिमी अर्द्धमागधी प्राकृत की चार बेटियाँ हैं, मगही ,भोजपुरी, नागपुरिया और छत्तीसगढ़ी।इस प्रकार पाली भोजपुरी की दादी है।

भोजपुरी स्वतंत्र और पूर्ण भाषा है जिसकी चार उप भाषाएँ हैं, डुमराँवी, चंपारणी, काशिका और बस्तिया। भोजपुरी भाषा विश्व की ताकतवर भाषा है। हम लोग विशेष कर भोजपुरिया जिन की मातृभाषा है, संस्कृति और पहचान है वह भी इसकी ताकत को नहीं पहचान पा रहे हैं। सम्पूर्ण भोजपुरी क्षेत्र की माटी आध्यात्मिक ऊर्जा से ओत प्रोत, अपार उर्वरा शक्ति, समृद्ध संस्कृति, वीर सपूतों, साहित्यकारों, चिंतकों विचारको को जन्म देने वाली पवित्र माटी है। हम लोगों को अपनी माटी और मातृभाषा को समृद्ध बनाने में थोड़ा सा भी उदास नहीं होना चाहिए। यह तो भोजपुरी के लिए गर्व की बात है। जो लोग अपनी माटी और मातृभाषा को सवाँर कर रखे हैं, आदर किया है कभी अपमानित नहीं हुए हैं। इतिहास इसका साक्षी है।

भोजपुरी भाषा और क्षेत्र उपेक्षा की राजनीतिक षड्यंत्र का एक हिस्सा है। मातृभाषा और क्षेत्र की विपन्नता का हिसाब अपने सांसदों और विधायकों से मांगने का समय आ गया है। किसी के बहकावे में मत आईए। आजादी के 75 वर्ष के बाद भी भोजपुरी भाषा को संवैधानिक दर्जा प्राप्त नहीं हो पाया है। आखिर क्यों अपने प्रतिनिधियों से पूछिए।

भोजपुरी भाषा को संवैधानिक दर्जा मिलने पर पढ़ने लिखने और रोजगार प्राप्त करने का दरवाजा खुल जाएगा और रास्ता साफ हो जाएगा, साथ ही साथ भोजपुरी क्षेत्र में रहने वाले लोगों के पूर्वजों का सपना भी पूरा होगा, सम्मान भी बढ़ेगा। आज सही समय है अपना सम्मान प्राप्त करने का, एकजुट होइए और संघर्ष के लिए आगे आईए, कोई दूसरा रास्ता नहीं है।

भारतीय भाषाओं को संवैधानिक दर्जा देने के लिए संविधान की आठवीं अनुसूची में जो प्रावधान किए गए हैं उसमें अनुच्छेद 344 और 351 है, इसके प्रावधानों का गहन अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि हिन्दी को स्थापित करना इसकी मूल आत्मा है। किसी भी भारतीय भाषा को संवैधानिक दर्जा देते समय यह ध्यान रखा जाएगा की उसके विकास से हिन्दी की प्रगतिशीलता बाधित तो नहीं हो रही है।

आज संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाएं शामिल की गई हैं। 38 भाषाओं को शामिल करने के लिए माँग चल रही है। जिसमें अन्य भाषाओं के साथ–साथ भोजपुरी भी है। 2004 में डुंगरी, बोडो, मैथिली और संथाली को संवैधानिक दर्जा दिया गया। भोजपुरी देखती रह गई, जबकि भोजपुरी उन सभी शर्तों को पूरा करती है जो संवैधानिक दर्जा के लिए होना चाहिए। सिर्फ भोजपुरी को हिन्दी के लिए खतरा का भ्रमजाल फैलाकर इसे हाँसिया पर रखने का षड्यंत्र किया जा रहा है। संविधान की आठवीं अनुसूची में उन 38 भाषाओं को शामिल करने से राष्ट्रीय एकता और हिन्दी भाषा को कौन सा खतरा है। इस प्रकार का भ्रम पैदा करना इस बात का गवाह है कि गुलाम मानसिकता के लोग अभी भी भारत भूमि पर हैं और मौका मिलते ही इसका लाभ उठा लेते हैं। ऐसे गुलाम मानसिकता और साम्राज्यवादी विचारधारा के लोगों से खतरा हो सकता है। किसी भाषा से किसी भाषा को क्या खतरा हो सकता है।यह सोचने और समझने की बात है। इस पर संज्ञान लेने की जरूरत है। भाषा अपनी आंतरिक समर्थ और स्वभाव से आगे बढ़ती है। प्रयोग और व्यवहार से फलती फूलती है। इस प्रकार के नकारात्मक सोच विभिन्न भाषाओं और संस्कृतियों के ताकत को कमजोर करते हैं।

भारत जैसे देश की खूबसूरती

कार्यालय : मनोरमा निवास, मकान सं.–684/1, वार्ड नम्बर–19, उमा नगर, उत्तरी देवरिया (उत्तर प्रदेश)
ईमेलः ssm1955.narsingh@gmail.com

इसकी भाषाई, सांस्कृतिक और भौगोलिक विविधता ही है।कोई भाषा मरेगी तो भारत के खूबसूरत बगीचा का सौंदर्य प्रभावित होगा।

भारत जैसे देश में भाषा नीति निर्धारित करते समय दूर दृष्टि, सहनशीलता, व्यवहारिक दृष्टिकोण, विश्व प्रेम, उचित आदर्श, पारस्परिक सद्भावना का विशेष ध्यान रखना चाहिए। इन बातों को ध्यान में रखकर नीति निर्धारण करने पर भाषा ही नहीं सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान हो जाएगा।

मातृभाषाओं के अवमानना से नैतिक साहस, कर्म उत्साह और संघर्ष करने की शक्ति के साथ–साथ मानव का विकास अवरूद्ध हो जाता है। क्योंकि मातृभाषा के अलावा अन्य भाषा में बातचीत करने में कठिनाई होती है और व्यक्ति असहज होने लगता है।धीरे–धीरे उसकी प्राण शक्ति कमजोर होने लगती है। उस जनसमूह में एक मनोवैज्ञानिक संकट उत्पन्न हो जाता है। सब में हीन भाव आ जाता है।

अपनी मातृभाषा को समृद्ध पवित्र और शास्त्रीय बनाना उन लोगों का नैतिक धर्म है सामाजिक उत्तरदायित्व है। इस बात को गहराई से समझना चाहिए। मातृभाषा और संस्कृतियों की उपेक्षा से हजारों भाषाएँ और संस्कृतियाँ मरने के कगार पर खड़ी है। आप सभी भोजपुरिया भाई–बहन मनन चिंतन करें अपनी मातृभाषा के लिए आगे आए। आप जैसे पढ़े–लिखे लोगों से वे अनपढ़ बहुत ही अच्छे हैं जो अपनी मातृभाषा को जिंदा रखे हैं। उनका तहे दिल से स्वागत होना चाहिए। उनसे प्रेरणा भी लेना चाहिए।

देखा जा रहा है कि भोजपुरी भाषा अपने लोगों की उपेक्षा का शिकार हो गई है। भोजपुरी क्षेत्र के विद्वान साहित्यकार लोग हिन्दी को सवाँरने की होड़ में अपनी मातृभाषा भोजपुरी को निर्दयता पूर्वक रोने के लिए छोड़ दिए। भोजपुरी भाषा अपने ताकत के बलबूते पर आज भी समृद्ध और ताकतवर भाषा के रूप में खड़ी है। दुनिया को अपनी मिठास से आनंदित कर रही है

आजकल भोजपुरी भाषा के विरासत को मिटाने का षड्यंत्र चल रहा है बाद में आप लोगों को भी उल्ला बना देंगे, आप कहीं के नहीं रहेंगे। दुनिया की सभी भाषा जानिए पर अपनी मातृभाषा को सबसे ऊपर रखिए। जहाँ भी आप कमजोर हुए लोग उसका फायदा उठा लेंगे सिर्फ हाथ मल करके रह जाना पड़ेगा। आज देखा जाए तो सिनेमा जगत के लोग, साहित्यकार, संगीतकार, अश्लीलता को परोसकर पैसा कमाने में लगे हैं। ऐसे नापाक मंसूबे वाले लोगों का सबसे अधिक शिकार भोजपुरी भाषा हुई है।इससे हमारी मातृभाषा कमजोर हो रही है। यह सिलसिला किसी भी कीमत पर रुकना चाहिए। इसके लिए लाठी और कलम दोनों की जरूरत है।

अभी तो भोजपुरी जैसी ताकतवर भाषा को गवाँर की भाषा कहा जा रहा, फुहरपन का जामा पहनाकर इसके अस्मिता को लूटा जा रहा है, कल कहां जाएगा कि भोजपुरी हिंदी की उप भाषा है। भोजपुरी के विकास से हिन्दी को खतरा है।इस प्रकार के गुलाम मानसिकता के लोगों को मुंहतोड़ जवाब देना पड़ेगा, आप सब लोग जागरुक होइए तभी अपनी मातृभाषा और संस्कृति की रक्षा कर सकेगें। अपने सामर्थ्य को पहचानिए। इसके बाद देखिए आपके सामने कोई नहीं टिकेगा और ना तो इस प्रकार का दुस्साहस करने का प्रयास करेगा। आजादी के 75 वर्ष के बाद भी भोजपुरी भाषा के संवैधानिक दर्जा का सवाल भोजपुरिया के सीने में छुपा हुआ है। हिन्दी भाषा के लगभग 60: साहित्यकार भोजपुरी माटी के लाल है, फिर भी दुर्भाग्य है कि यह लोग अपनी मातृभाषा को कभी याद नहीं किए बल्कि भोजपुरी भाषा में लिखने वाले लोगों का मजाक उड़ाए।

भारत की आजादी की लड़ाई में सबसे अधिक योगदान भोजपुरिया लोगों का था। भारत को समृद्ध बनाने में इनका योगदान कम नहीं है। भोजपुरी भाषा का नाम भारतवर्ष के प्रतापी राजा के नाम पर पड़ा है। ए थे राजा भोज। भोजपुरी भाषा का इतिहास लगभग 1400 वर्ष पुराना है। आज भोजपुरी भाषा अंतर्राष्ट्रीय भाषा बन गई है। यह भारत की एकमात्र भाषा है जो भारत के बाहर बोली जाती है। यह बात हम गर्व से कह सकते हैं कि भोजपुरी भाषा का सूर्य कभी डूबता नहीं है।

भोजपुरी भाषा सिर्फ भाषा ही नहीं है,यह संस्कृति है, अस्मिता है और पहचान भी है। भाषा विज्ञान के अनुसार भोजपुरी भाषा में भी सभी गुण मौजूद हैं जो एक समृद्ध भाषा में होना चाहिए। भारतीय संविधान निर्माता को इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए था कि भारत विविध भाषा और बहु संस्कृति संपन्न देश है। इसकी उपेक्षा दिखाई देती है। संविधान में भोजपुरी भाषा के प्रति संवेदनहीनता संविधान निर्माता की देन है। जबकि संविधान निर्माता की टीम में अहम भूमिका भोजपुरी क्षेत्र और भोजपुरी भाषी लोगों की रही है। संविधान सभा के अध्यक्ष और भारत के प्रथम राष्ट्रपति भारत रत्न डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद सिवान बिहार के ही थे। किसका किसका नाम गिनाए अच्छा नहीं लगता है।

बीती बात बिसारिए आगे की सुधी लेहू। अब मातृभाषा भोजपुरी को संवैधानिक दर्जा के लिए सबको एक साथ आपसी मतभेद भुलाकर हूँकार भरने का समय आ गया है। सैकड़ो संगठन भोजपुरी भाषा को समृद्ध बनाने, संवैधानिक दर्जा दिलाने के लिए अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं, पर जमीनी हकीकत कुछ और है। जब तक हम लोग नियत साफ करके अपनी आवाज को नहीं उठाएंगे, मातृभाषा भोजपुरी को अपने सम्मान से जोड़कर नहीं चलेंगे कुछ होने वाला नहीं है।

जिस दिन आपकी कलम सही दिशा में चलेगी और लाठी लेकर सड़क पर उतर जाएंगे, भोजपुरी भाषा को संवैधानिक दर्जा मिलना है

भोजपुरी

नालंदा के उजास आ सरहपा के सहजता

रवींद्र नाथ श्रीवास्तव 'परिचय दास'

नालंदा के नाम लेतहीं मन में एगो आदर उत्पन्न होला। आज जब हम नालंदा के पश्चिमी विचार–दृष्टि से देखे के कोशिश करीलें, त ई सिरिफ अतीत के स्मृति ना रह जाला, बल्कि एगो सवाल बन जाला–ज्ञान आखिर ह का, आ ओकर संबंध सत्ता, समाज आ मनुष्य से कइसे जुड़ल बा?

ज्ञान के अक्सर शक्ति से जोड़ के देखल गइल बा। माइकल फूको जइसन विचारक बतवले कि जहाँ ज्ञान बा, ओहिजा सत्ता के सूक्ष्म रूप भी मौजूद रहेला। नालंदा के देखल जाव त ई बात साफ नजर आवेला। एहिजा ज्ञान सिरिफ बाँटल ना जात रहल, ओकर चयन, अनुशासन आ नियंत्रण भी होत रहल। हर कोई नालंदा में घुस ना सके। परीक्षा, योग्यता आ कठोर साधना से गुजरल पड़त रहे। एसे ई सवाल उठेला कि नालंदा के ज्ञान कवन लोग खातिर रहल। सभे खातिर, कि चुनिंदा लोग खातिर?

पुरबिया भारतीय कविता के जनक आचार्य सरहपा एहीजे आचार्य रहले। दोहाकोस इनहीं के रचना बा।

सरहपा आ श्री नालंदा महाविहार के संबंध के देखल जाए त ई सिर्फ इतिहास के तथ्य ना बल्कि भारतीय बौद्धिक परंपरा के गहिराई के संकेत ह। सरहपा, जेकरा के सिद्धाचार्यन में प्रमुख स्थान मिलल बा, ओह परंपरा के प्रतिनिधि हवन जहाँ ज्ञान केवल ग्रंथन में ना बल्कि जीवन के अनुभव में बसल रहे। नालंदा महाविहार, जे प्राचीन भारत के सबसे बड़ा शिक्षा केंद्र रहल, ओह ज्ञान–धारा के संस्थागत रूप में सामने आवेला।

सरहपा के जीवन आ काव्य में

जवन सहजता, प्रत्यक्षता आ अनुभव के आग्रह बा, ऊ नालंदा जइसन संस्थान के औपचारिकता से थोड़ा अलग नजर आवेला। नालंदा में तर्क, व्याकरण, दर्शन आ शास्त्रीय अनुशासन के प्रधानता रहे, जबकि सरहपा के दोहा अनुभव के सीधा उद्‌घाटन करेला। ऊ कहेला कि सत्य के खोज बाहरी कर्मकांड में ना बल्कि भीतर के अनुभूति में बा। एह तरह से देखल जाए त सरहपा एगो तरह से ओह स्थापित ज्ञान–व्यवस्था के भीतर से उठल एगो सवाल हवन।

फिरो, ई विरोध सीधा टकराव ना ह। नालंदा महाविहार जवन बौद्ध दर्शन के गहराई से विकसित करत रहल, ओही भूमि पर सिद्ध परंपरा के बीज भी कहीं न कहीं पड़ल। सरहपा के विचार, चाहे ऊ औपचारिक शिक्षा से बाहर के लगे, लेकिन ओहिजा के बौद्धिक वातावरण से पूरी तरह अलग भी ना रहल। ई मानल जा सकेला कि नालंदा जइसन संस्थान ज्ञान के आधार तैयार कइल, आ सरहपा जइसन साधक ओकरा के जीवन में उतार के नया रूप देले।

सरहपा के काव्य में जे सहज भाषा, लोक के बिम्ब आ आंतरिक मुक्ति के स्वर मिलेला, ऊ कहीं न कहीं ज्ञान के लोक में ले जाए के प्रयास ह। नालंदा में जवन ज्ञान विद्वानन के बीच सीमित रह जाला, सरहपा ओकरा के जनमानस तक पहुँचावे के कोशिश करेलें। एह तरह से ऊ ज्ञान के "लोकायन" के दिशा में एगो महत्वपूर्ण कदम हवन।

श्री नालंदा महाविहार आ सरहपा के संबंध के समझे में ई बात महत्वपूर्ण बा कि ज्ञान के यात्रा हमेशा दुई दिशा में चलेला–एक ओर संस्थान, अनुशासन आ परंपराय दोसरा ओर अनुभव, सहजता आ विद्रोह। नालंदा पहिले के प्रतिनिधित्व करेला, जबकि सरहपा दोसरा के। लेकिन असल में ई दुनों एक–दूसरा के पूरक हवन।

आज जब हम नालंदा के खंडहर आ सरहपा के वाणी के याद करीलें, त

प्रोफेसर एवं पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग तथा संकायाध्यक्ष, पालि एवं अन्य भाषा संकाय, नव नालंदा महाविहार विश्वविद्यालय, नालंदा (बिहार)
ईमेलः parichaydaspoet@gmail.com

एह बात के एहसास होला कि ज्ञान केवल किताब में बंद चीज ना ह। ऊ जीवित तब बनत बा जब ऊ जीवन से जुड़ेला, प्रश्न उठावेला आ मनुष्य के भीतर परिवर्तन के चिंगारी जगावेला।

एह दृष्टि से सरहपा आ नालंदा, दूनों मिलके भारतीय ज्ञान परंपरा के एगो व्यापक आ जीवंत रूप प्रस्तुत करेलनकृजहाँ अनुशासन आ स्वतंत्रता, शास्त्र आ अनुभव, दूनों के संगम से असली बौद्धिकता जन्म लेला।

पश्चिमी विश्वविद्यालयन के इतिहास देखीं त University of Bologna आ University of Paris जइसन संस्थान सामने आवेलन, जहाँ शिक्षा के औपचारिक ढाँचा बनल। उहवाँ चर्च के प्रभाव रहे, जबकि नालंदा में बौद्ध विहार के परंपरा। दुनों जगह ज्ञान धर्म के छाया में पनपत रहल, लेकिन नालंदा के खासियत ई रहे कि एहिजा तर्क आ साधना के अनोखा मेल रहे। ई मेल पश्चिमी तर्कवादी सोच से अलग एगो राह सुझावेला।

नालंदा के एगो अउर रूप बाकृवैश्विक ज्ञान केंद्र के। आज के जमाना में जेकरा के हम वैश्वीकरण कहिला, ओकर बीज नालंदा में पहिले से मौजूद रहे। चीन, तिब्बत, कोरिया से विद्यार्थी आवत रहलें। ह्वेनसांग जइसन विद्वान एहिजा पढ़के आपन देश लौट गइलें आ ज्ञान के सेतु बन गइलें। ई पूरा प्रक्रिया देख के लागेला कि नालंदा एगो "बौद्धिक संगम" रहे, जहाँ सीमाएँ घुल जालीं।

आलोचनात्मक नजर सिरिफ प्रशंसा ना करेला, ऊ सवाल भी पूछेला। कार्ल मार्क्स के नजर से देखीं त ई समझ में आवेला कि ज्ञान के हर संस्था के पाछे आर्थिक आ सामाजिक संरचना काम करत होखेला। नालंदा के संरक्षण राजा लोग करत रहलें। त का ई संभव ना कि ज्ञान आ सत्ता के बीच एगो गहरा रिश्ता रहे? ई सवाल आसान ना ह लेकिन जरूरी जरूर बा।

उत्तर–औपनिवेशिक दृष्टि से नालंदा के देखल जाए त अउर रोचक हो जाला। एडवर्ड सईद बतवले कि पश्चिम अक्सर पूर्व के आपन नजर से गढ़ेला। नालंदा के भी कबहूँ "स्वर्णिम अतीत" बनाके देखल गइल, त कबहूँ "पिछड़ल परंपरा" कहके कमतर आँकल गइल। सच्चाई शायद एह दुनों के बीच कहीं बा, जवन हमके खुद खोजे के पड़ी।

नालंदा के संरचना के अगर Claude Lévi-Strauss के नजर से देखल जाए, त ई खाली भवन ना रह जाला। ई एगो सांस्कृतिक संरचना ह, जहाँ हर चीज–मठ, पुस्तकालय, पाठशाला–एक दोसरा से जुड़ल बा। ई पूरा व्यवस्था मिलके एगो अर्थ रचेला, जवन सिरिफ पढ़ाई से आगे बढ़के जीवन के ढाँचा बनावेला।

आधुनिक समय में जब हम नालंदा के विनाश के याद करीलें, त ई खाली इतिहास ना रह जाला, बल्कि स्मृति के राजनीति बन जाला। पश्चिमी चिंतन कहेला कि स्मृति हमेशा वर्तमान से जुड़ल रहेला। आज जब नया नालंदा बनावे के कोशिश हो रहल बा, त ई अतीत के पुनर्जीवन के प्रयास भी ह, आ साथ ही एगो सांस्कृतिक दावा भी।

जॉक देरिदा के "विघटन" के नजर से देखीं त नालंदा के कहानी कबहूँ एकरे मतलब में बंद ना रह सके। हर दौर में ओकर अर्थ बदल जालाकृकभी बौद्ध केंद्र, कभी भारतीय गौरव, कभी खोइल विरासत। ई बदलत अर्थ ही नालंदा के जिंदा रखेला।

नालंदा हमके सोचल सिखावेला। पश्चिमी विचार चाहे जेतना तर्क दे, नालंदा के मौन खंडहर आजो पूछत बा–ज्ञान के असली मतलब का ह? का ई सिरिफ उपयोग के चीज ह, कि आत्मा के उजाला भी?

नालंदा के ई चुप्पी सबसे बड़ा जवाब ह–ऊ कुछ कहेला ना, लेकिन मनुष्य के भीतर सवाल जगा देला।

आ मनुष्य ऊ हमेशा आसान जवाब खोजेला, लेकिन नालंदा हर बार ओकरा सामने कठिन रास्ता खोल देला। शायद एही में ओकर असली महत्ता छुपल बा।

संस्कृत लघु कथा

हृदयात् निर्गता कथा

गणेश शंकर बाजपेयी

ह्यः एव घटना आसीत्। अहं समाजस्य अन्नदातॄणां विकासाय शासनस्य एकस्मिन् महति कार्यक्रमे सम्मिलितः आसम्। मम भूमिका लघु आसीत्, किन्तु उत्साहः महान् आसीत्, यतः सर्वेषां सहभागिता आसीत्।

पञ्चतारक-निवासे एषः कार्यक्रमः आयोजितः आसीत्। तत्र उच्चाधिकारी, मन्त्रिणः, विविधवर्गीयाः मान्यजनाः च उपस्थिताः आसन्। वातावरणं अत्यन्तं शोभनं समृद्धं च आसीत्। भोजनं जलं च पर्याप्तम् आसीत्। अहं अपि तत्र उपस्थितः इति मम विश्वासः न भवति स्म।

सुरक्षा-व्यवस्था अतीव दृढा आसीत्। सर्वत्र निरीक्षणं क्रियते स्म। सर्वं सुस्थितं आसीत्। विशिष्ट-अतिथयः समये आगच्छन्। पत्रकाराः छायाचित्रकाराः च सर्वं चित्रयन्ति स्म। अहं अपि तेषां मध्ये आसम्।

अनन्तरं सर्वे स्वस्थानानि गृहीत्वा कार्यक्रमः आरब्धः। अहं अपि स्वकर्तव्यं आरब्धवान्।

अकस्मात् मया ज्ञातम्–मम बटुः (धनपुटः) नास्ति!

अहं विस्मितः अभवम्। कथं सम्भवति? अल्पकालपूर्वं सर्वं सुरक्षितम् आसीत्। अहं सर्वत्र अन्वेषणं कृतवान्, सर्वान् अपृच्छम्, सुरक्षा-कर्मचारिणः अपि पृष्टवान्–किन्तु बटुः न लब्धः। तस्मिन् मम आवश्यक-दस्तावेजाः धनं च आसीत्।

अनेकैः जनैः सहायता कृता, केचन सांत्वनां दत्तवन्तः। उद्घोषणा अपि कृता–"यदि कस्यचित् बटुः लब्धः, कृपया प्रत्यर्पयतु।" समयः अतीतः, आशा क्षीणा अभवत्।

गृहं गन्तुं अपि मम समीपे धनं न आसीत्। तदा एका भद्रा महिला मम साहाय्यं कृतवती, गृहम् आगन्तुं धनं दत्तवती। तदा मया अनुभूतम्–अद्यापि लोके सद्भावः अस्ति।

सायंकाल-भोजनम् अपि मया न भुक्तम्, यतः मनः व्याकुलम् आसीत्। मनः वदति स्म–"किम् तव आसीत् यत् नष्टम्?" किन्तु हृदयम् न स्वीकृतवान्।

अन्ततः अहं गृहम् आगतः। रात्रौ निद्रां कर्तुं यत्नं कुर्वन् आसीत्, तदा दूरभाषः निनादितः। सुरक्षा-विभागात् कश्चन पुरुषः आसीत्। सः अपृच्छत्–"भवतः किं नष्टम्?"

क्षणमेकं मया चिन्तितम्–"न किमपि आगतम्, न किमपि नष्टम्।" किन्तु ततः अहं सर्वं अवदम्। सः अवदत्–"आगच्छतु, एकः बटुः लब्धः अस्ति, पहचानं दातव्यम्।"

अहं तत्र गतवान्। अधिकारी अवदत्–"अयं बटुः लब्धः। धनं नास्ति, किन्तु दस्तावेजाः सन्ति।"

क्षणमेकं दुःखम् अनुभूतम्, किन्तु पुनः चिन्तितवान्–"यत् लब्धम्, तत् पर्याप्तम्।" अहं बटुं गृहीत्वा, मस्तके स्थाप्य, ईश्वरं स्मृतवान्।

मम मनसि गीतम् उदितम्– "यत् लब्धम् तत् भाग्यं मन्ये, यत् नष्टम् तत् विस्मरामि, जीवनस्य मार्गे अग्रे गच्छामि।"

यस्मिन् समाजे मम बटुः नष्टः, तस्मिन् एव पुनः लब्धः। धनं न लब्धम्, किन्तु मनः शान्तिः लब्धा।

अहं गृहम् आगत्य शान्त्या सुप्तवान्।

सेक्टर–3, उद्यान–2, एल्डिको, रायबरेली रोड, लखनऊ
ईमेलः gsbajpai1591963@gmail.com

कविता

किसान

राणा प्रताप सिंह

खेत में
दानों के साथ
अंकुरता

उगता
बढ़ता

फूलता
फलता
पकता
कटता

खलिहान में

फिर से बदलता हुआ
दानों की शक्ल में
एक निरीह
शरीफ
आदमी।

मई, १९८५

'हाशिए पर लगे निशान' संग्रह में प्रकाशित

मकान नं0 247, सेक्टर–2, उद्यान–2, एल्डिको, रायबरेली रोड, लखनऊ–226025
ईमेल : dr.ranapratap59@gmail.com

Peer Reviewed

Business Management

Green Business and Green Marketing: An Integrative Review

N. P. Chandni and Sushmitha Baskar*

Abstract

This article focusses on Green Business and Green Marketing, which are rapidly increasing in the global scenario of pressing environmental issues. Green Business use sustainable production practices to produce green products and services, whereas green marketing is responsible for the promotion of these sustainable products to the consumers. Even though these are different processes, they are interlinked, which helps in achieving environmental sustainability. Consumers' perception, trust, and awareness are essential for a green enterprise to be successful in the long run. To be sustainable and build trust, these businesses and marketing strategies should use real, open, and customer-focused methods.

Keywords: Green Business, Green Marketing, Green Washing.

1. Introduction

The present world is entangled with lot of issues that costs life on earth. The pressing issues of environmental degradation, pollution, has its source of origin from us humans that makes each situation worse. The products that we use and the wastes it produces finally seeps into the food chain and ultimately affects humans. This necessitates the use of sustainable practices which leads to the development of sustainable resources. Business that are always defined as profit makers are now shifting to a more inclusive sustainable business model. A triple bottom line approach wherein the consideration of the stakeholders including the environment and the society is carried out in these models (Bocken et al., 2014). These business models are focusing on achieving sustainability. Societal sustainability can be more effective with proper sustainable organization that creates products which are valued economically, environmentally and socially (Schaltegger et al., 2016). Marketing shapes consumer behaviour. Therefore, sustainable marketing strategies that includes focusing on green product development, cause-related marketing, sustainable packaging and ethical branding, aligns the customers values and makes them to have a sustainable choice in the products and services they chose (Khalid, 2023).

Pro-environmental behavior of citizens where the behavior of harming as less as possible and protecting the environment, necessitates for the achievement of the sustainable development goals (SDGs) (Steg & Vlek, 2009). For promoting the pro environmental behaviors, the design, implementation and the evaluation of these programs, by the frameworks such as community based social marketing is very effective. These may contribute to the enhancement of sustainable values and choices in individuals' daily practices (Rodriguez-Sanchez, 2023). The brand awareness is a potential factor that influences the purchasing intensity. With the higher degree of awareness of brand more consumers tend to purchase goods or services from the respective brand (Chen, 2024). The knowledge level of the consumer has less impact in the consumer behaviour when compared to the awareness levels. The implementation of more programs, for customer awareness can aid in protecting their rights from corrupted marketers (Ishak & Zabil, 2012).

Green business focuses on environment friendly goods and service production, and also on sustainable production, operations and strategy whereas green marketing focus on promoting these environmentally friendly products and practices. Both of these are aimed for sustainability but they are being studied separately. Businesses that adopt sustainable practices lack in their

Discipline of Environmental Studies, School of Interdisciplinary and Trans-disciplinary Studies, Indira Gandhi National Open University, New Delhi - 110068, India.
**Corresponding author email : sushmithab@ignou.ac.in;*

communication to introduce their services effectively. And practices of greenwashing in which the marketing is used in products without sustainability is in practice. Green marketing is a strategy that works on actual sustainable practices, and the success of green businesses depends on consumer awareness and acceptance. So, the integration of these is required to build trust, produce brand image and thereby achieve real environmental impact. There exists a gap between actual sustainable practices and their communication when these concepts are studied differently. So, integrating them is essential for achieving economic and environmental goals. The aim of this review is to explore the relationship between them and to identify the challenges and future perspectives.

Green Business and Green Marketing: Concepts and Interrelationship

Business driven by any company that imparts no adverse effects on environment, economy or society is referred to as a 'Green Business'. Green Business is also known as 'Sustainable Business'. The standards with which a green business hold to are the environmental sustainability while making the choice, satisfying the consumer demand by supplying the ecologically sustainable products and applying environmental values into business practices. They adhere to environmental, social and economic aspects of performance. To systematically present the key components and their associated advantages, major findings from Porwal (2023) is summarized in Table 1.

Green marketing involves organizational initiatives aimed at designing eco-friendly packaging, promoting sustainable packaging techniques, and fostering a transition towards environmentally responsible practices (Ghobbe & Nohekhan, 2023). The green marketing practices are incorporated with the creation of eco-friendly products, emphasis on energy efficiency, use of sustainable/raw recyclable materials and elimination and proper management of hazardous substances (Mohammad et al., 2023). In addition to these features, advantages and limitations of green marketing practices identified in Eltayib et al. (2025) is given in Table 2.

The incorporation of sustainable practices in businesses is increasing. Companies are building their business models with inclusion of the environmental sustainability vision not merely because of the legal obligation but due to their concern towards environmental issues. Implementation of sustainable innovative strategies are added to their value chain, for example in the manufacturing stage they were producing more with less resources, and also with the product where it is made more sustainable (Lopes et al., 2022). Marketing, plays an important role in the promotion of eco-friendly goods and services in the market and promotes the sustainability of the products. Marketing campaigns spread awareness to the consumers about their choices, helpful for the society and environment. Education, emphasis and awareness on the advantages of switching into sustainable practices can shape a positive attitude towards a sustainable culture by the

Table 1: Key Features, Advantages, and Limitations of Green Business (Porwal, 2023)

Features of Green Business	Advantages of Green Business	Limitations in Green Business
Reduction in use of resources, pollution elimination, reduction in waste generation.	Reduction in carbon Footprint due to cleaner choices resulting in lower greenhouse gases.	High initial investment costs.
Less reliance on Fossil fuels for energy and focus on renewable sources of energy like wind, solar etc.	Conservation of natural resources.	Challenges in obtaining high-cost advanced technologies.
Adoption of recycling, Volume of waste reduction they produce.	Biodiversity conservation	Low consumer awareness and adoption.
Engagement in community projects, donation towards environmental causes.	Enhanced energy efficiency through renewable energy adoption.	Market competition with traditional businesses.
Transparent communication of sustainability initiatives.	Improved waste management efficiency.	Difficulty in ensuring supply chain compliance.

Table 2. Key Features, Advantages, and Limitations of Green Marketing (Eltayib et al., 2025)

Features of Green Marketing	Advantages of Green Marketing	Limitations in Green Marketing
Use of eco-labels and green product claims	Enhances consumer awareness and trust	Possibility of misleading claims (greenwashing)
Sustainable packaging (biodegradable, recyclable, lightweight)	Reduces waste and improves environmental performance	Higher cost and design complexity
Marketing communication and awareness campaigns (ads, social media, flyers)	Increases consumer awareness and influences buying decisions	Low consumer awareness
Integration with Corporate Social Responsibility (CSR) and ethical practices	Builds brand credibility and competitive advantage	Complex implementation of core business strategies due to sustainability integration.
Promotion of green consumer behavior	Encourages sustainable purchasing habits	Consumer decision making is complex

consumers (Guzovski, 2024). There are different marketing strategies to achieve the goal of sustainability. In a recent study, the impact of marketing with the use of different green strategies, including green price, green product, green distributions and green promotions had positively influenced the consumers purchasing intention (Ashoush & Kortam, 2022). The use of marketing techniques and with inclusion of the strategies altogether can drive the consumers to act for sustainable purchases (Ashoush & Kortam, 2022). Therefore, an integration of the green business practice with the use of sustainable resources resulting into the production of green products or services and the green marketing strategies that strongly influence the consumer awareness is essential for shaping a sustainable consumption culture and resulting in environmental benefits. The interrelationship of Green Business and the Green marketing are shown in Fig.1.

Green marketing Strategies

Green marketing utilizes different strategies to provide customer awareness that lead to sustainable consumption and for environment friendly day to day practices. One such strategy that has a prominent weightage is the ecolabelling for communication tool to promote sustainable products. These labels provide consumer education by explaining the environmental impact throughout the product life cycle. Even though it has an important position in product choices, the price and quality are that matters to the customers (Wojnarowska et al., 2021). Another strategy of green marketing that has gained attention is the sustainable packaging due to the pressing issues of pollution and resource depletion. This concept does not merely belong to the packaging material choice but extends through the value chain process including production, usage and disposal. This also plays a crucial role in reducing food waste. Sustainable packaging has a strategic vision but are influenced by customer perception, attitude and behavior (Boz et al., 2020).

Green advertising is such a strategy that influences intentions of customers in purchasing eco-friendly products and services. This integrates

Figure1. Interrelationship of Green Business and Green Marketing

environmental knowledge, eco-labelling and also eco-branding. Well designed and informative green advertising backed up with credible brands and labels shapes the consumer choices towards sustainability (Li, 2025). Other strategical measures for creating awareness through green marketing includes digital marketing and environmental reporting. The use of green products that are re-usable, recyclable and renewable, the distribution of these products through which less harm is done to the environment (Green distribution), consumers' readiness to incur additional costs for environmentally sustainable products (Green price), the marketing efforts that are done to introduce these products and services to the human end with least negative impacts in the environment (Green Promotion) are some of the strategies in which green marketing is working towards the sustainable goals (Polonsky, et al., 2002; Eneizan, 2015; Olarewaju & Ganiyu, 2021; Hosseinzadeh & Azizpour, 2013). All these different strategies worked at their optimum level of transparent communication involving influences on the customer choices leading to the actual purchase of sustainable products.

Consumer Perception and Behavior

For any business to sustain and flourish, consumers are an inevitable part of a business, whether it is profit-oriented or sustainability-focused. Their perception of business goods and services influence purchasing decisions. Green marketing is also significantly affected by consumer perception. The current environment is facing lot of issues which made the people recognizing these, and trying to be aware of these problems. These have led people to shape their behavior to sustainable choices and attitude. Factors such as knowledge of environment, personal choices, social and economic factors directly affect the consumer behaviors. The more the environmental awareness, more the chances in which customers turn towards sustainability thereby increasing the demand of green products. (Makhmudova, 2026). The selection of sustainable goods or green products have great dependance on the customer attitude. A study done by Malhotra et al. (2024) explores how an actual purchase is dependent on the attitude of customers. A positive attitude towards the environment and the eco-friendly products directly influence the purchasing intention. These positive attitudes are formed due to the awareness of how much they can contribute individually in conserving the natural resources and reducing the pollution shifting to green product and services. Careful consideration regarding changes in the sustainable production, show that green products lead to increased price range when compared to the non-sustainable products. Therefore, another factor under the customer behavior is the willingness to pay the premium price for the eco-friendly goods. This concept of willingness to pay in the ecofriendly choices is studied by Kucher et al. (2019). In their study it is observed that gender, age and status have additional role where primary factor of influence is the purchasing power of the population. It was studied in the same research that the younger age group have a positive intention for the purchase of green products. Be any product always consumers look for the authenticity of the product. A study by Adi et al. (2022) studies that trust is also considered as an important factor for the actual purchase intention. The maintenance of customer trust through green marketing and product innovation leads to positive purchase intention of sustainable products. Another topic of discussion while considering the customer behavior towards sustainability is the attitude – behavior gap. The study by Khan et al. (2025) focuses on this gap that exists between the positive environmental attitude and the actual purchasing behavior. The factors such as eco-literacy and perceptions of green products including the green concept, hardness, stigma and readiness were studied by the authors. An individual customer has different perceptions on a product they buy. This can be explained by the concept in a study conducted by Khan et al. (2025) where they discussed attitude- behavior gap, which is known as the green gap. The environmental responsibility of an individual and the social concern gap is mediated by the belief that individual actions can make a difference. An individual with high eco-literacy can make an individual choice of buying a sustainable product. But some hinderances such as perceived effort, social stigma and lack of readiness weaken the decision of the individual. So, addressing both psychological as well as

practical constraints is required for bridging this gap. As a result, not only the economic status there is the interplay of the cognitive and behavioral factors that can shorten the gap between the customers intention and actual purchasing behaviors.

Challenges

Under the roof of sustainability, green business and green marketing strives through their own mode of action to reach their perceived goals of sustainable lifestyles. This provides the opportunities to the customers to become familiar with sustainable practices. As these pave the way towards sustainability there are critical limitations. A study conducted by Torelli et al. (2020), focused on green washing that are the misleading environmental communication used by companies, which is a major issue. These fake communications are done so that they can obtain stakeholders approval, in addition to improving the company's reputation. And they do so by exaggerating their environmental responsibilities. The study by Torelli et al. (2020) also discusses about different levels of greenwashing in which a level "dark", where hidden or illegal activities are done. Once these get exposed, it can negatively affect the company's reputation, loss of trust in customers, and leads to stronger negative reactions from stakeholders. These challenges thereby necessitate for a truthful and transparent communication.

Creation of sustainable products and services is the core responsibility of green businesses whereas making sure that these efforts reach the customers is the goal of Green marketing. A true insight where one of the challenges leads to another can be observed here. A study conducted by Nisa et al. (2022) observes how greenwashing can influence customer behavior. The false claims of the product and services create distrust and confusion in customers leading to the non-readiness to purchase a sustainable product. These exaggerated claims lead to the uncertainty of the true environmental performance of the products or services, thereby increasing the perceived risk and leading to declined purchase intention. This can affect the overall green market and divert the choices towards unsustainability.

The challenges experienced by green business falls into different categories of socio-economic aspects. Higher costs for sustainable products, lack of advanced technology for the innovation, inadequate financial support, infrastructural insufficiency for waste management and recycling Along with low eco-awareness, resistance to change, weak regulatory frameworks are some of the key obstacles that slows down the green business models (Sujaya et al., 2019).

As mentioned, challenges are interlinked. Eco labelling which are intended for educating the customers regarding the product's environmental friendliness, does not serve its purpose as customers are often less aware regarding the labels and their representative insights. This makes these labels not to be considered during purchase, which creates weak purchase intentions and the role of ecolabels in the green marketing loses its vision, when customers don't even consider it as a key to sustainability. And, the existence of false labels also increases trust issues and confusion, again diminishing the effectiveness of these labels due to unawareness of their significance (Alamsyah et al., 2019). Challenges are meant for overcoming. In a similar approach, these challenges require future perspectives that can strengthen the credibility and ensure long-term effective sustainability that start with green business and green marketing.

Future Perspectives on Sustainable Business and Marketing

As discussed with the challenges, it is crucial to deal with them and outline the future scope of the sustainable business and marketing. These are required to strengthen the practices of sustainability through different strategies and therefore attaining an environment friendly lifestyle. Greenwashing is one of the difficult challenges in the sustainability path and it leads to distrust among consumers and negatively affect the consumer behaviours. Understanding greenwashing levels is necessary, so that they are subjected to the stakeholders perception and reactions. Losing trust and legitimacy should be avoided through transparent and credible communications by the companies (Torelli et al., 2020). The awareness and knowledge of the environment is crucial for making a better choice for sustainability. The study of Makhmudova (2026) also addresses that in addition to the economic and informational

barriers, the requirement of better pricing strategies, accessibility and reliable certification system should be considered. Also, integration and implementation of the environmental policies, marketing strategies with financial support and the technological and infrastructural advancements lead towards the actual buying behavior of the green products and services (Makhmudova, 2026). These future perspectives in enhancing the sustainability culture can be achieved by strengthening trust, increasing awareness, and integrating them with supportive policies and consumer-oriented strategies.

Conclusion

The current global context of the environment is filled with various pressing issues of pollution and depletion of resources. Green business deals with the production practices of environmentally friendly goods and services whereas green marketing leads to the promotion of these products to the consumer and making them aware of these efforts that positively benefit our surroundings. Even though they hold on to different strategies in attaining sustainability, these two are not independent. They are interrelated and collectively contribute to environment sustainability. The long-term success of green enterprises requires consumers perception, trust and awareness. Even though their advantages are many there are various challenges that affect their long-term sustainability movement including green washing. Businesses and marketing should adopt transparent communication, authentic and customer-oriented strategies for achieving sustainability and enhancing credibility.

References

Alamsyah, D. P., Hariyanto, O. I. B., & Rohaeni, H. (2019). Customer green awareness and eco-label for organic products. In Advances in Economics, Business and Management Research (Vol. 100). Atlantis Press. https://doi.org/10.2991/icoi-19.2019.11

Adi, I. N. R., Mulyadi, M., Wirsa, I. N., Astawa, I. N. D., & Setini, M. (2022). Trust is felt to be a good trigger in marketing and green products in generating purchase interest. MIX: Jurnal Ilmiah Manajemen, 12(2), 170–182. https://doi.org/10.22441/jurnal_mix.2022.v12i2.001

Ashoush, N., & Kortam, W. (2022). The impact of green marketing strategies on consumers' purchasing intention. The Business and Management Review, 13(2), 263–275.

Bocken, N. M. P., Short, S. W., Rana, P., & Evans, S. (2014). A literature and practice review to develop sustainable business model archetypes. Journal of Cleaner Production, 65, 42–56. https://doi.org/10.1016/j.jclepro.2013.11.039

Boz, Z., Korhonen, V., & Sand, C. K. (2020). Consumer considerations for the implementation of sustainable packaging: A review. Sustainability, 12(6), 2192. https://doi.org/10.3390/su12062192

Chen, S. (2024). The impact of brand awareness on purchase intention. Highlights in Business, Economics and Management, 30.

Eltayib, N., Abdullah, O., & Manoj, M. (2025). Impact of green marketing practices on consumer purchase awareness and buying decision. International Journal of Latest Technology in Engineering, Management & Applied Science (IJLTEMAS), 14(1). https://doi.org/10.51583/IJLTEMAS.2025.1401035

Eneizan, B. M., Wahab, K. A., & Bustaman, U. S. A. (2015). Effects of green marketing strategy 4Ps on firm performance. International Journal of Applied Research, 1(12), 821–824.

Ghobbe, S., & Nohekhan, M. (2023). Mental perception of quality: Green marketing as a catalyst for brand quality enhancement (arXiv preprint No. 2312.15865). arXiv. https://arxiv.org/abs/2312.15865

Guzovski, M. (2024). The importance of marketing in promoting sustainability: Influence on consumer behavior and preferences. In IRASA International Scientific Conference: Science, Education, Technology and Innovation (SETI VI 2024) – Book of Proceedings. https://doi.org/10.62982/seti06.magu.49

Hosseinzadeh, S., & Azizpour, M. (2013). The effect of green products and green promotion on customers' loyalty to the brand of Naghsh-e Jahan Sugar Company. International Journal of Management and Social Sciences Research (IJMSSR), 2(6), 114–118.

Ishak, S., & Zabil, N. F. M. (2012). Impact of consumer awareness and knowledge to consumer effective behavior. Asian Social Science, 8(13). https://doi.org/10.5539/ass.v8n13p108

Khalid, A. (2023). Sustainable marketing and its impact on society: A study of marketing strategies and opportunities promoting eco-friendly lifestyle. International Journal of Scientific Research in Engineering and Management (IJSREM), 7(8).

Khan, S. N., Minhas, N., & Neale, N. (2025). Bridging the green gap: Examining consumer green perceptions in an extended model of theory of planned behavior. Future Business Journal, 11, 175. https://doi.org/10.1186/s43093-025-00593-9

Kucher, A., Hełdak, M., Kucher, L., & Raszka, B. (2019). Factors forming the consumers' willingness to pay a price premium for ecological goods in Ukraine. International Journal of Environmental Research and Public Health, 16(5), 859. https://doi.org/10.3390/ijerph16050859

Li, D. (2025). Impact of green advertisement and environmental knowledge on intention of consumers to buy green products. BMC Psychology, 13, 220. https://doi.org/10.1186/s40359-025-02538-x

Lopes, J. M., Gomes, S., Pacheco, R., Monteiro, E., & Santos, C. (2022). Drivers of sustainable innovation strategies for increased competition among companies. Sustainability, 14(9), 5471. https://doi.org/10.3390/su14095471

Makhmudova, G. R. (2026). Ecological awareness and consumer behavior in choosing "green products". European International Journal of Multidisciplinary Research and Management Studies, 6(1), 21–27. https://doi.org/10.55640/eijmrms-06-01-06

Malhotra, R., Garg, V., Aggarwal, P., Aggarwal, A., Bansal, O., & Tusnial, B. (2024). Consumer perception and buying behaviour regarding eco-friendly products. Journal of Business Management and Information System, 11(1). https://doi.org/10.48001/jbmis.1101005

Mohammad, A. A. S., Aldaihani, F. M. F., Alrikabi, S. M., Alshurideh, M. T., Abazeed, R. A. M., Al-Husban, D. A. O., Mohammad, A., Al-Hawary, S. I. S., & Al Kurdi, B. H. (2023). Customer awareness towards green marketing mix in 5-star hotels in Jordan. In N. Alshurideh, R. Masa'deh, & M. Al Kurdi (Eds.), The effect of information technology on business and marketing intelligence systems (pp. 2157–2176). Springer. https://doi.org/10.1007/978-3-031-12382-5_116

Nisa, N. U., Mendoza, S. A. J., & Shamsuddinova, S. (2022). The concept of greenwashing and its impact on green trust, green risk, and green consumer confusion: A review-based study. Journal of Administrative and Business Studies, 8(3), 1–18. https://doi.org/10.20474/jabs-8.3.1

Olarewaju, O. M., & Ganiyu, I. O. (2021). Handbook of research on climate change and the sustainable financial sector. IGI Global.

Polonsky, M. J., Schuppisser, S. W., & Beldona, S. (2002). A stakeholder perspective for analyzing marketing relationships. Journal of Market-Focused Management, 5, 109–126. https://doi.org/10.1023/A:1020326523807

Porwal, P. D. (2023). Green business and environmental sustainability. Trends in Banking, Accounting and Business, 2(1), 41–50. https://doi.org/10.46632/tbab/2/1/7

Rodriguez-Sanchez, C. (2023). The role of social marketing in achieving the planet sustainable development goals (SDGs). International Review on Public and Nonprofit Marketing, 20, 559–571. https://doi.org/10.1007/s12208-023-00385-3

Schaltegger, S., Hansen, E. G., & Lüdeke-Freund, F. (2016). Business models for sustainability: Origins, present research, and future avenues. Organization & Environment, 29(1), 3–10. https://doi.org/10.1177/1086026615599806

Steg, L., & Vlek, C. (2009). Encouraging pro-environmental behaviour: An integrative review and research agenda. Journal of Environmental Psychology, 29(3), 309–317.

Sujaya, H., Salins, M., & Aithal, P. S. (2019). Challenges associated with running a green business in India and other developing countries (MPRA Paper No. 95163). https://mpra.ub.uni-muenchen.de/95163/

Torelli, R., Balluchi, F., & Lazzini, A. (2020). Greenwashing and environmental communication: Effects on stakeholders' perceptions. Business Strategy and the Environment, 29(2), 407–421. https://doi.org/10.1002/bse.2373

Wojnarowska, M., Sołtysik, M., & Prusak, A. (2021). Impact of eco-labelling on the implementation of sustainable production and consumption. Environmental Impact Assessment Review, 86, 106505. https://doi.org/10.1016/j.eiar.2020.106505

हरियाणवी गीत

बेरा सै के!

मंगतराम शास्त्री 'खड़तल'

ना घर तेरा ना घर मेरा,बेरा सै के!
दुनिया चिड़िया रैन बसेरा, बेरा सै के!!
राजे रंक हुये देक्खे अर दीन धनाड्ढे
टोटा नफा समय का फेरा, बेरा सै के!
हांग्गै तै जो कर देगा इकरंगी दुनिया
कोए भी नी इसा चितेरा, बेरा सै के!
मौसम का बदलाव भि तूं काब्बू कर लेगा
इतना ब्योंत नहीं सै तेरा, बेरा सै के!
अभिमन्यू ज्यूं चक्करव्यू म्हं कोनी फसदी
इब जैन्–जी तोड़ै सै घेरा, बेरा सै के!
नीती–नीयत साफ नहीं राक्खी तो राजन!
ले बैठ्ठैगा तनै कमेरा, बेरा सै के!

जिसनै ठा कै चाल्लण की तूं धमकी देवै
यू झोला भी कोनी तेरा,बेरा सै के!
भोत अमीर–वजीर फस लिये,और फसैंगे
एपस्टिन का बडा सै घेरा, बेरा सै के!
ब्याही गेल्यां दगा कमाकै घर नी बसदा
'बिन घरनी घर भूत का डेरा', बेरा सै के!
किसपै करां यकीन धरोहर सांभण का हम
रखवाला खुद आप लुटेरा, बेरा सै के!
'खड़तल' काली रात मुकैगी पक्कम, सुण
फिर आवैगा नया सवेरा, बेरा सै के!

शास्त्री भवन, नया जवाहर नगर, चौड़ी गली, नजदीक जाइट इंजीनियरिंग कालेज, सफीदो रोड, जींद (हरियाणा)
ईमेलः mangatshastri@gmail.com

Ashwagandha: An Ancient Herb for Modern Health

Sunita Mishra and Kuril Sanjeet

Abstract

Ashwagandha (Withania somnifera) is one of the most important medicinal plants of India, widely used in Ayurveda for promoting strength, mental balance and long-term wellbeing. Traditionally classified as a Rasayana, Ashwagandha has been valued for centuries as a rejuvenating herb that supports immunity, vitality and resistance to disease. In recent years, changing lifestyles, increasing stress and rising non-communicable disorders have renewed global interest in natural and preventive healthcare, making Ashwagandha highly relevant in modern society. This article presents an integrated overview of Ashwagandha from a people's science perspective, covering its historical and cultural background, botanical features, chemical constituents and health benefits. The role of Ashwagandha in lifestyle management and nutrition is discussed, highlighting its adaptogenic nature in regulating stress, improving sleep, enhancing cognitive performance and supporting physical endurance. Attention is also given to its agricultural importance, sustainable cultivation and contribution to rural livelihoods. By connecting traditional knowledge with modern scientific understanding, the article shows how Ashwagandha functions not merely as a medicine but as a holistic health resource. Its gentle action, safety and preventive value make it suitable for long-term use in daily life. Promoting Ashwagandha responsibly can strengthen individual health, community wellbeing and environmental balance. Thus, Ashwagandha emerges as an ancient herb with strong relevance for modern health challenges.

Key words: Ashwagandha, Medicinal plant, Health benefits, Herb, Ayurveda

Introduction

Ashwagandha is the common name for Withania somnifera, a small woody shrub belonging to the Solanaceae (nightshade) family. It grows naturally in dry and semi-arid regions and is widely cultivated in different parts of India, especially in Madhya Pradesh, Rajasthan, Gujarat, Uttar Pradesh and Maharashtra. The plant has oval leaves, small greenish-yellow flowers, and bright red berries enclosed in a papery husk. However, the most valuable part of the plant is its root, which is used extensively in medicine. The name "Ashwagandha" comes from Sanskrit, where *ashwa* means horse and *gandha* means smell. The root is said to have a horse-like aroma, and traditionally it is believed to impart the strength and vitality of a horse to the user.

What is Ashwagandha

In recent years, the search for natural ways to improve health and manage stress has increased across the world. People are turning toward traditional knowledge systems that offer safe and holistic solutions. Among the many medicinal plants used in Indian traditions, Ashwagandha holds a special place. Often described as the "Indian ginseng," Ashwagandha is valued for its ability to support physical strength, mental balance, and overall wellbeing. Its growing popularity is not only limited to India but has expanded globally as researchers and health practitioners explore its potential in modern lifestyles.

In Ayurveda, Ashwagandha is classified as a Ramayana, which means a rejuvenating substance that promotes longevity, vitality and resistance to disease. Unlike medicines that target only one symptom, Rasayana herbs are meant to nourish the body at a deeper level. Ashwagandha has been prescribed for centuries to people suffering from fatigue, weakness, stress, nervous disorders, and age-related problems. Ancient Ayurvedic texts describe its role in improving memory, strengthening muscles and bones, enhancing immunity, and supporting reproductive health. Its reputation as a tonic for both the body and mind has remained strong across generations. The relevance of Ashwagandha has become even greater in the modern world. Today, people face constant mental pressure due to work stress, academic

Professor Sunita Mishra is former Dean, SHS, Department of Food and Nutrition, Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow. Corresponding author email : sunitabbau@gmail.com ; sanjeed kuril123@gmail.com

competition, digital overload and lifestyle changes. Sleep disorders, anxiety, reduced immunity and low energy levels are common problems. In this context, Ashwagandha is often referred to as an adaptogen, a natural substance that helps the body adapt to physical and emotional stress. Instead of forcing the body in one direction, adaptogens support balance. Ashwagandha helps regulate stress hormones, improves the body's response to pressure, and supports calmness without causing drowsiness. This makes it useful for both students and working professionals who need mental clarity along with physical endurance.

Traditionally, Ashwagandha has been used in various forms. The dried root is powdered and taken with warm milk, honey, or water. In some households, it is mixed with ghee and sugar to prepare strengthening tonics for children, elderly people and recovering patients. With changing times, Ashwagandha is now also available in capsules, tablets, extracts and teas. Despite these modern forms, the basic principle remains the same—to support the natural healing capacity of the body rather than replacing it. This gentle yet effective nature of Ashwagandha is one of the reasons it continues to be trusted in both traditional and modern health systems. Another important aspect of Ashwagandha is its connection with preventive healthcare. Instead of waiting for illness, traditional practices encourage maintaining strength and balance before disease occurs. Ashwagandha supports this idea by improving immunity, maintaining hormonal stability and supporting nervous system function. People who regularly consume Ashwagandha under proper guidance often report better sleep, reduced anxiety, improved focus and greater resistance to seasonal infections. These benefits are especially valuable in a time when lifestyle-related disorders are increasing rapidly.

From a people's science perspective, Ashwagandha is also interesting because it connects farmers, researchers, healthcare workers and consumers. It is not just a medicine but also an agricultural crop that supports rural livelihoods. Many small farmers cultivate Ashwagandha because it requires less water and grows well in dry soils. Thus, the plant contributes not only to individual health but also to economic and environmental sustainability. When traditional crops like Ashwagandha are promoted responsibly, they strengthen both public health and rural development. The global interest in Ashwagandha has encouraged scientific research into its properties. Scientists study its bioactive compounds, stress-reducing potential, effects on immunity and role in cognitive health. Although modern laboratories use advanced techniques, the basic curiosity remains the same as in ancient times—how a simple plant root can influence human wellbeing so deeply. This dialogue between tradition and science makes Ashwagandha an excellent example of how indigenous knowledge can guide modern health innovation.

In simple words, Ashwagandha is not merely a herb; it is a symbol of balance between body, mind and environment. It reflects the Indian philosophy that health is not only the absence of disease but a state of physical strength, mental peace and social harmony. As modern life becomes faster and more demanding, the gentle wisdom of plants like Ashwagandha offers a natural way to reconnect with ourselves. Understanding what Ashwagandha is and why it matters is the first step toward appreciating its role in both traditional culture and contemporary health practices.

Why Ashwagandha is Important Today

In the modern world, life has become faster, more competitive and mentally demanding than ever before. Technological growth has improved comfort, yet it has also increased stress, anxiety, sleep problems and lifestyle-related disorders. Long working hours, academic pressure, irregular food habits and reduced physical activity disturb the natural balance of the body and mind. As a result, many people suffer from fatigue, weak immunity, poor concentration and emotional instability. In this situation, the importance of natural and holistic solutions is being widely recognised. Ashwagandha has emerged as one such valuable herb that responds effectively to the needs of present-day society.

One of the main reasons Ashwagandha is important today is its role in stress management. Modern stress is not only physical but also psychological and social. Continuous exposure to deadlines, digital screens, noise

and information overload affects the nervous system. Ashwagandha is known as an adaptogenic herb, meaning it helps the body adapt to stress without disturbing normal functioning. Instead of giving artificial stimulation, it supports internal balance. People who use Ashwagandha under guidance often experience calmer minds, better emotional control and improved sleep quality. In an era where mental health issues are increasing, such natural support is extremely valuable. Another major concern today is declining immunity. Urban lifestyles, pollution, processed food and lack of physical movement weaken the body's defence system. Seasonal infections, fatigue and slow recovery from illness are common. Ashwagandha supports immune function by strengthening the body at a cellular level. Traditional knowledge and modern studies both suggest that regular use of Ashwagandha helps the body resist infections and recover faster from stress-related exhaustion. During times when public health awareness is increasing, herbs that enhance natural immunity have special relevance.

The problem of sleep disorders is also widespread. Many people suffer from insomnia due to work pressure, anxiety and excessive screen exposure at night. Poor sleep affects memory, metabolism and emotional stability. Ashwagandha is traditionally associated with promoting restful sleep without causing dependency. Its botanical name *somnifera* itself indicates its calming influence. By supporting the nervous system, it helps the body enter a relaxed state, allowing natural sleep patterns to improve. Good sleep is the foundation of productivity and health, making Ashwagandha especially meaningful in modern life. Modern society also faces issues of reduced physical energy and endurance. Sedentary habits, lack of exercise and unbalanced nutrition weaken muscles and reduce stamina. Earlier, Ashwagandha was given to warriors, students and elderly people to build strength and vitality. Even today, people engaged in demanding work, sports or academic activities use Ashwagandha to maintain physical performance. It supports muscle health, reduces fatigue and improves recovery. Thus, Ashwagandha is not only a remedy for illness but also a supporter of everyday functional strength.

Mental performance is another area where Ashwagandha holds importance. Concentration, memory and emotional stability are essential in education and professional life. Continuous mental strain affects cognitive function and confidence. Ashwagandha helps calm overactive minds while supporting clarity of thought. Students preparing for competitive examinations and professionals handling complex tasks benefit from its balancing effect. Unlike stimulants that exhaust the nervous system over time, Ashwagandha nourishes it gently, promoting long-term mental wellbeing. Hormonal imbalance has become a common problem due to stress, irregular schedules and poor diet. This affects both men and women, leading to fatigue, mood changes and reduced reproductive health. Ashwagandha supports hormonal regulation by improving stress response and endocrine function. Traditionally, it has been used to support vitality and reproductive strength. Today, with rising lifestyle disorders, its role in maintaining internal hormonal harmony has gained new relevance. Another reason for Ashwagandha's importance today is the global movement toward natural and preventive healthcare. Instead of depending only on chemical drugs after disease appears, people are becoming interested in maintaining health before illness develops. Ashwagandha fits well into this approach. It works gently, supports the body's own healing ability and reduces dependency on strong medicines for minor problems. This preventive philosophy saves healthcare costs and improves quality of life.

From a social perspective, Ashwagandha also supports sustainable development. It is cultivated in dry regions with low water requirements, making it suitable for environmentally friendly agriculture. Promoting Ashwagandha cultivation benefits farmers, preserves biodiversity and strengthens rural economies. Thus, its importance extends beyond individual health to community wellbeing and environmental balance.

Historical and Cultural Background of Ashwagandha

Ashwagandha has been an integral part of Indian traditional medicine and culture for thousands of years. Long before modern laboratories and

pharmaceutical industries existed, communities relied on plants to maintain health, treat illness and strengthen the body. Among these plants, Ashwagandha earned a respected position because of its wide range of benefits for both physical and mental wellbeing. Its story is deeply connected with Ayurveda, rural life, and India's philosophy of harmony between humans and nature.

Ashwagandha in Ayurveda

In Ayurveda, Ashwagandha is classified as a Rasayana herb, a group of medicines that promote longevity, vitality and resistance to disease. Rasayana therapy is not only meant for curing illness but for nourishing the body at a deeper level. Ancient Ayurvedic texts describe Ashwagandha as a strengthening tonic for people suffering from weakness, fatigue, nervous disorders and age-related decline. It was prescribed to children for growth, to adults for endurance, and to the elderly for maintaining mobility and mental clarity. Classical Ayurvedic literature such as *Charaka Samhita* and *Sushruta Samhita* mention Ashwagandha as a valuable medicinal plant. It was recommended for conditions related to imbalance of Vata dosha, which is associated with dryness, instability, anxiety and degeneration. By calming Vata, Ashwagandha supports the nervous system, muscles and joints. Physicians prepared Ashwagandha in various forms-powders, decoctions, medicated ghee and fermented formulations-depending on the patient's age, strength and health condition.

In traditional healthcare, Ashwagandha was also used as a Balya (strengthening agent) and Medhya (brain tonic). Students, scholars and warriors consumed it to improve focus, memory and stamina. Women were advised Ashwagandha preparations after childbirth to restore strength and hormonal balance. Thus, the herb was not restricted to treating disease but was integrated into daily life as a supporter of overall wellbeing.

Meaning and Symbolism of the Name Ashwagandha

The name Ashwagandha comes from Sanskrit. The word is made of two parts: *Ashwa*, meaning horse, and *Gandha*, meaning smell or essence. The roots of the plant have a strong aroma that resembles the scent of a horse. However, the meaning goes beyond smell alone. Traditionally, the name also symbolises the idea that the herb provides the strength, vitality and endurance of a horse to the person who consumes it. In Indian culture, the horse represents power, energy, speed and stability. By associating Ashwagandha with the horse, ancient healers expressed their belief that this herb restores life force, improves stamina and supports reproductive and muscular health. This symbolic naming shows how traditional knowledge used simple natural metaphors to communicate complex health concepts to common people. Ashwagandha is also known by other names such as Indian ginseng in modern times because of its rejuvenating nature, though botanically it is different from true ginseng. In regional languages, it is called *Asgandh*, *Asoda*, *Ghoda-asoda* and several other names, reflecting its widespread cultural acceptance across India.

Traditional Knowledge and Folk Use

Beyond classical Ayurveda, Ashwagandha has long been used in folk medicine by rural and tribal communities. Village healers and household elders passed down knowledge about its preparation and use from one generation to another. In many regions, Ashwagandha root powder mixed with milk and honey was given to weak children to improve appetite and strength. Elderly people consumed it to reduce joint pain, fatigue and nervousness. Farmers used it during physically demanding seasons to maintain stamina. In traditional households, Ashwagandha was not treated as a rare medicine but as a familiar part of daily life. Women prepared simple tonics using Ashwagandha with ghee, jaggery or warm milk. During recovery from illness, it was offered to help regain lost energy. This practical use made Ashwagandha a household herb rather than a specialised drug. Ashwagandha also holds importance in traditional reproductive health. It was used to support fertility, sexual vitality and hormonal balance. Newly married couples or people experiencing weakness were sometimes advised Ashwagandha preparations as part of strengthening therapy. In this way, the herb became connected with family health and generational continuity.

Ashwagandha in Spiritual and Cultural Practices

Indian culture views health as a balance of body, mind and spirit. Ashwagandha fits naturally into

this philosophy. It was often used during spiritual training, meditation and disciplined lifestyles. Students in ancient learning centres consumed strengthening herbs to maintain concentration and physical endurance while studying scriptures for long hours. Yogis and practitioners of meditation used Ashwagandha to stabilise the nervous system and reduce mental restlessness. Some traditional beliefs also associated Ashwagandha with longevity and youthful energy. It was considered helpful in slowing down ageing processes and maintaining clarity of thought. Though expressed in cultural language, these ideas reflect early understanding of stress management and nervous system health. The respect for Ashwagandha is visible in how it was cultivated and preserved. Farmers protected medicinal plants carefully, knowing their value for the community. The herb was grown near homes, temples and gardens, ensuring easy access for healing purposes.

Transmission of Knowledge Across Generations

Before written medical education became common, knowledge about Ashwagandha spread through oral tradition. Elders taught younger members how to identify the plant, harvest roots at the right time, dry them properly and store them safely. This transfer of knowledge strengthened the relationship between people and their environment. With time, this traditional wisdom entered formal education through Ayurvedic colleges and research institutions. Today, Ashwagandha is studied scientifically, but its foundation remains deeply cultural. The respect given to the herb reflects India's long history of observing nature closely and learning from experience.

Cultural Relevance in the Modern World

Even today, Ashwagandha maintains its cultural identity while adapting to modern healthcare. Urban families may use capsules instead of traditional powders, but the belief in its strengthening nature continues. The popularity of Ashwagandha globally has revived interest in India's traditional medicinal heritage. It reminds society that healing does not always come from complex chemicals but can also grow quietly from the soil. Ashwagandha's historical journey from village gardens to international research laboratories shows how traditional knowledge can remain relevant across centuries. It stands as a symbol of India's medicinal wisdom, connecting ancient practices with present-day health challenges.

Botanical Description of Ashwagandha

Ashwagandha is a well-known medicinal plant that has been valued in Indian healthcare traditions for centuries. To understand its importance properly, it is necessary to look at its botanical identity, physical structure and natural growing conditions. The scientific study of plants not only helps in correct identification but also supports safe cultivation, conservation and use in medicine. Ashwagandha, though simple in appearance, possesses unique botanical features that make it suitable for both traditional and modern herbal practices.

Scientific Identity and Classification

Ashwagandha is scientifically known as *Withania somnifera (L.)* Dunal. It belongs to the family Solanaceae, which is commonly called the nightshade family. This family also includes familiar plants such as tomato, potato, chilli and brinjal. The genus *Withania* contains several species, but *Withania somnifera* is the most important from a medicinal point of view. The term *somnifera* means "sleep-inducing" or "sleep-bearing," indicating the calming effect traditionally associated with the plant. This botanical name reflects ancient observations about its influence on the nervous system. In different parts of India, Ashwagandha is known by local names such as Asgandh, Asoda, Punir, Ghoda-asoda and Indian ginseng. Proper botanical identification is essential because many plants may look similar, but only the correct species

provides the desired medicinal benefits.

Plant Morphology and Physical Structure

Ashwagandha is a small, woody, perennial shrub, usually growing about 30 to 150 centimetres in height. The plant has a rough, branched stem that becomes woody at the base as it matures. The branches spread in different directions, giving the plant a bushy appearance.

Roots

The root is the most valuable and widely used part of Ashwagandha. It is long, thick and fleshy, with a pale brown or greyish colour. When dried, the roots become hard and emit a distinct earthy aroma, which is traditionally described as horse-like in smell. Internally, the root contains starch, fibres and active compounds that contribute to its medicinal properties. Roots are usually harvested after six to eight months of growth, when the concentration of bioactive substances is highest.

Stem

The stem of Ashwagandha is cylindrical, hairy and green when young, gradually becoming woody with age. It supports multiple branches and provides structural strength to the plant. The stem also plays a role in transporting water and nutrients from the roots to the leaves and flowers.

Leaves

Ashwagandha leaves are simple, oval to elliptic in shape, and arranged alternately on the stem. They are dull green in colour, soft in texture and covered with fine hairs. The leaves are generally 5 to 10 cm long and have smooth margins. Besides photosynthesis, the leaves also contain certain medicinal components and are sometimes used in traditional remedies, though the root remains the primary part for therapeutic use.

Flowers

The flowers of Ashwagandha are small, greenish-yellow and bell-shaped. They usually appear in the leaf axils, either singly or in small clusters. Flowering begins about two to three months after planting. The flowers are not showy, but they are biologically important as they develop into fruits. Pollination mainly occurs naturally with the help of insects.

Fruits and Seeds

After flowering, the plant produces small round berries that turn bright red or orange when mature. These berries are enclosed in a papery, lantern-like covering known as a calyx, similar to that of a tomato plant. Inside the berries are numerous tiny yellow seeds. These seeds are used for propagation and cultivation. Though the fruits are attractive, they are not the main medicinal part of the plant. Thus, every part of Ashwagandha-roots, stems, leaves, flowers and fruits-plays a role in its growth cycle, but the root remains the most valued component in medicine.

Natural Habitat and Distribution

Ashwagandha grows naturally in dry and semi-arid regions. It prefers warm climates and well-drained soils. The plant is hardy and can survive in areas with low rainfall, which makes it suitable for cultivation in marginal lands where other crops may not grow well. In India, Ashwagandha is widely distributed across several states. Major cultivation areas include: Madhya Pradesh, Rajasthan, Gujarat, Uttar Pradesh, Maharashtra, Haryana, Punjab and parts of Karnataka and Andhra Pradesh. Among these, Madhya Pradesh is considered the largest producer of Ashwagandha. Outside India, Ashwagandha is also found in parts of North Africa, the Middle East and some regions of the Mediterranean. However, India remains the primary centre of diversity and traditional use of the plant. The plant thrives best in temperatures between 20°C and 35°C. It does not tolerate waterlogging and requires sandy-loam soil with good drainage. Excess moisture can damage roots and reduce medicinal quality.

Botanical Importance in Medicinal Use

Correct botanical identification ensures the safety and effectiveness of herbal medicine. Adulteration or confusion with similar species can reduce benefits or cause harm. Therefore, understanding Ashwagandha's morphology and growth pattern is essential for farmers, traders and health practitioners. From seed to root, the life cycle of Ashwagandha reflects the connection between soil, climate and medicinal quality. The strength of the root depends on the environment in which the plant grows. Dry climates often enhance the concentration of useful compounds, making

Indian Ashwagandha highly valued in global markets.

Chemical Constituents and Health Benefits of Ashwagandha

Ashwagandha is valued not only because of tradition but also because of its rich chemical composition. Modern science has helped identify several natural compounds present in the plant that are responsible for its therapeutic actions. These substances work together to support physical strength, mental balance and overall wellbeing. Understanding the chemical nature of Ashwagandha makes it easier to appreciate why it has remained important from ancient times to the present day.

Chemical Constituents of Ashwagandha

The medicinal power of Ashwagandha mainly lies in its roots, although leaves and berries also contain useful elements. The plant produces a group of natural compounds that protect it from environmental stress, and these same compounds benefit the human body.

Withanolides

Withanolides are the most important active compounds found in Ashwagandha. They are naturally occurring steroidal lactones. In simple words, they are plant chemicals that behave somewhat like hormones in the body but in a gentle and balanced way. Withanolides help the body adapt to physical and mental stress. They support nerve function, reduce inflammation and protect cells from damage. Some withanolides also show antioxidant activity, which means they help neutralize harmful free radicals. This action supports healthy aging and protects tissues from wear and tear. Different varieties of Ashwagandha contain different levels of withanolides, and their concentration depends on soil, climate and harvesting time. This is why proper cultivation and processing are important for quality herbal products.

Alkaloids

Ashwagandha also contains small amounts of alkaloids such as withanine, somniferine and anaferine. Alkaloids are nitrogen-containing compounds commonly found in medicinal plants. They often affect the nervous system. In Ashwagandha, alkaloids contribute to its calming and relaxing effect. They help in reducing nervous tension and improving sleep quality. Traditionally, Ashwagandha has been used for restlessness and fatigue, and alkaloids play a supportive role in these effects. Although present in moderate quantity, alkaloids add to the overall therapeutic profile of the herb by supporting mental comfort and emotional stability.

Other Bioactive Compounds

Besides withanolides and alkaloids, Ashwagandha contains several other useful substances:

- **Saponins**, which support immune response and help in nutrient absorption.
- **Flavonoids**, which act as antioxidants and protect cells from damage.
- **Tannins**, which help in tissue repair and digestion.
- **Amino acids and sugars**, which provide nourishment and energy.
- **Iron and minerals**, which support blood and muscle health.

Together, these compounds make Ashwagandha a complete herbal support system rather than a single-action medicine. The natural balance of these substances allows the plant to work gently with the body instead of forcing changes.

Role in Lifestyle and Nutrition

Ashwagandha (*Withania somnifera*) has long been valued in Indian tradition not only as a medicine but also as a daily life supporter for physical, mental and nutritional wellbeing. In Ayurveda it is classified as a *Rasayana*, meaning a rejuvenating herb that promotes longevity, strength and balanced functioning of the body. In today's stressful and fast-paced lifestyle, Ashwagandha is gaining renewed importance as a natural aid to improve energy, immunity, digestion and

emotional stability. Modern lifestyle problems such as irregular sleep, anxiety, poor diet, sedentary habits and continuous mental pressure disturb the body's hormonal and metabolic balance. Ashwagandha works gently to support the nervous system and endocrine functions, helping the body adapt to stress. Because of its adaptogenic nature, it does not overstimulate the body but instead improves resilience, stamina and recovery. Regular intake can support daily functioning without causing dependency, which makes it suitable for long-term lifestyle management.

Daily Use of Ashwagandha

Ashwagandha can be safely incorporated into daily routines when taken in moderate and recommended amounts. Traditionally, it was consumed to enhance strength, improve memory, support reproductive health and maintain youthful vitality. Today, people use it to manage fatigue, improve sleep quality, enhance concentration and reduce mental exhaustion. For working professionals, students and elderly people, Ashwagandha supports mental clarity and reduces stress-induced tiredness. It helps stabilize cortisol levels, which are often elevated due to continuous psychological pressure. Balanced cortisol improves appetite, digestion and sleep cycles, making Ashwagandha suitable as a lifestyle supplement rather than only a therapeutic drug.

In physically active individuals and athletes, Ashwagandha contributes to better muscle recovery, endurance and energy production. It supports protein synthesis and reduces oxidative stress, which helps prevent weakness and frequent illness. Thus, daily use promotes both mental and physical sustainability in routine life.

Forms of Consumption

Ashwagandha is available in different forms to suit dietary preferences and convenience:

Powder (Churna): The traditional form is Ashwagandha root powder. It is commonly mixed with warm milk, honey or water and taken once or twice daily. Milk enhances absorption and provides nourishment, making it ideal for strengthening and calming the nervous system. Taking powder at night improves sleep and relaxation, while morning intake supports stamina throughout the day.

Capsules and Tablets: Capsules are popular in modern lifestyles because they are easy to carry and dose. They provide standardized amounts of active compounds and avoid the bitter taste of the herb. Many people prefer capsules for regular intake at home or at work. They are useful for individuals who want consistency in dosage.

Ashwagandha Milk: In Ayurveda, Ashwagandha is traditionally boiled with milk and sometimes mixed with ghee and jaggery. This preparation is nourishing and supports tissue building (*dhatu poshana*). It is especially beneficial for underweight individuals, elderly people and those recovering from illness.

Herbal Tea: Ashwagandha can also be used as a mild herbal infusion. When combined with herbs like tulsi, ginger or cinnamon, it becomes a relaxing beverage that supports digestion and mental calmness. Tea form is useful for people sensitive to heavy preparations and those preferring lighter dietary integration.

Each form allows flexibility in lifestyle adoption without disturbing routine food habits.

Dietary Integration

Ashwagandha fits well within a balanced nutritional framework. Unlike synthetic supplements, it works harmoniously with natural food systems. When combined with nutritious diets rich in whole grains, fruits, vegetables, milk and healthy fats, Ashwagandha enhances nutrient utilization and metabolic efficiency. It supports digestive fire (*Agni*) gently and helps in better absorption of nutrients. Good digestion leads to improved energy, immunity and tissue repair. Ashwagandha also helps regulate blood sugar and lipid metabolism when taken with healthy meals, making it useful in lifestyle-related metabolic disorders. In traditional diets, Ashwagandha was often combined with natural sweeteners such as honey or jaggery and fats like ghee. These carriers improve bioavailability of its active components and support nourishment. This integration reflects the Ayurvedic principle that herbs should complement food rather than replace it. For modern nutrition, Ashwagandha can be added to smoothies, warm beverages, protein drinks or wellness tonics without altering the core dietary pattern. Its neutral nutritional nature allows safe incorporation into vegetarian and non-vegetarian diets alike.

Lifestyle Balance and Preventive Role

One of the most valuable aspects of Ashwagandha in lifestyle management is prevention. Instead of treating only disease, it strengthens the body's natural defence systems. Regular use supports immune modulation, improves sleep rhythm, stabilizes mood and protects against lifestyle disorders such as anxiety, hypertension and fatigue syndrome. Mental health is closely connected to nutrition and routine. Ashwagandha improves neurotransmitter balance, helping reduce irritability, restlessness and cognitive overload. Better mental health promotes disciplined eating habits, regular physical activity and social wellbeing, completing the cycle of healthy living. In ageing populations, Ashwagandha supports joint flexibility, muscle tone and memory retention. It delays degenerative changes by reducing oxidative stress and inflammation, which are common outcomes of unhealthy lifestyles.

Conclusion

Ashwagandha (*Withania somnifera*) stands as a remarkable example of how ancient knowledge can remain relevant in modern health care. From its roots in Ayurveda to its growing acceptance in contemporary wellness practices, Ashwagandha represents a bridge between tradition and science. It is not merely a medicinal plant but a holistic supporter of physical strength, mental balance and preventive health. Its long history of use shows that Indian communities understood the importance of nourishing the body and mind together, rather than treating symptoms alone. In today's world, where stress, fatigue, lifestyle disorders and emotional imbalance are increasingly common, Ashwagandha offers a gentle yet effective solution. Its adaptogenic nature helps the body respond to pressure without overstimulation. By supporting the nervous system, immunity, hormonal balance and muscular strength, Ashwagandha contributes to overall resilience. Unlike synthetic drugs that may act quickly but cause dependency or side effects, Ashwagandha works slowly and naturally, strengthening the body's own capacity to heal and protect itself. The botanical richness and chemical composition of Ashwagandha explain its wide range of benefits. Compounds such as withanolides, alkaloids and antioxidants act together to reduce inflammation, protect cells, improve energy metabolism and support mental calmness.

This natural synergy makes Ashwagandha suitable not only for treating weakness and stress, but also for maintaining everyday health. When combined with balanced nutrition and disciplined lifestyle practices, its effects become more sustainable and meaningful. Another important dimension of Ashwagandha is its role in preventive healthcare and sustainable development. Promoting Ashwagandha encourages people to focus on wellness before disease occurs. At the same time, its cultivation supports farmers in dry regions, conserves biodiversity and strengthens rural economies. Thus, Ashwagandha contributes not only to individual wellbeing but also to social and environmental balance.

References

Afonso, A. G., Fernandez-Lazaro, D., Adams, D. P., Monserda-Vilaró, A., & Fernandez-Lazaro, C. I. (2023). *Effects of Withania somnifera (Ashwagandha) on hematological and biochemical markers, hormonal behavior, and oxidant response in healthy adults: A systematic review. Current Nutrition Reports*, 12, 465-477. https://doi.org/10.1007/s13668-023-00481-0

Guo, S., & Rezaei, M. J. (2024). *The benefits of ashwagandha (Withania somnifera) supplements on brain function and sports performance. Frontiers in Nutrition*, 11, 1439294. https://doi.org/10.3389/fnut.2024.1439294

Lopresti, A. L., Smith, S. J., Malvi, H., & Kodgule, R. (2019). An investigation into the stress-relieving and pharmacological actions of *Withania somnifera* (Ashwagandha): A systematic review of human trials. *Journal of Alternative and Complementary Medicine*, 25(1), 1-15. https://doi.org/10.1089/acm.2018.0185

Wiciński, M., Fajkiel-Madajczyk, A., Sławatycki, J., Szambelan, M., Szyperski, P., Wojciechowski, P., & Gawryjołek, M. (2025). *Ashwagandha (Withania somnifera) and its effects on well-being- A review. Nutrients*, 17(13), 2143. https://doi.org/ 10.3390/ nu17132143

Kumar, G. (2025). *Ashwagandha (Withania somnifera): Ayurvedic and modern scientific review. International Education and Research Journal*, 11(12). https://doi.org/10.5281/zenodo.18085778

Mishra, S., Gupta, R., & Dubey, P. K. (2025). *The role of Ashwagandha (Withania somnifera) in cancer treatment: A comprehensive review. International Journal of Applied Ayurved Research*, 7(2), 77–85. https://doi.org/10.70057/ijaar.2025.70202

Shinde, S., Balasubramaniam, A. K., & Mulay, V. (2023). *Recent advancements in extraction techniques of Ashwagandha (Withania somnifera) with insights on phytochemicals, structural significance, pharmacology,*

and food applications. *ACS Omega*, 8, 40982–41003. https://doi.org/10.1021/acsomega.3c03491

Singirala, S. K., et al. (2025). *Extraction of bioactive compounds from Withania somnifera: Functional food applications and phytochemical insights*. *International Journal of Food Science*. https://doi.org/10.1155/ijfo/9922626

Afonso, A. G., et al. (2023). *Effects of Withania somnifera (Ashwagandha) on hematological and biochemical markers…* *Current Nutrition Reports*, 12, 465–477. https://doi.org/10.1007/s13668-023-00481-0

Lopresti, A. L. (2021). *Ashwagandha (Withania somnifera) for the treatment and enhancement of mental and physical conditions: A systematic review of human trials*. *Journal of Herbal Medicine*, 100434. https://doi.org/10.1016/j.hermed.2021.100434

Vaidya, N., et al. (2025). *Safety and tolerability of Withania somnifera root extract in healthy male participants: A pilot randomized clinical trial*. *Food Science & Nutrition*. https://doi.org/10.1002/fsn3.71388

Raut, A. A., & Rege, N. N. (2016). *Effect of Withania somnifera on physical performance and cardiovascular parameters*. *International Journal of Basic & Clinical Pharmacology*, 4, 42. https://doi.org/10.18203/2319-2003.ijbcp20164114

Jamnekar, P. P., Dehankar, T. J., Bedre, R. V., & Dharan, B. G. (2025). *Ashwagandha as an adaptogenic herb: A comprehensive review of immunological and neurological effects*. *Cureus*, 17(11), e96183. https://doi.org/10.7759/cureus.96183

Guo, S., & Rezaei, M. J. (2024). *The benefits of ashwagandha supplements on brain function and sports performance*. *Frontiers in Nutrition*, 1439294. https://doi.org/10.3389/fnut.2024.1439294

Deore, S. L., Baviskar, B. A., Khadabadi, S., Kide, A. A., & Vighne, R. C. (2024). *Ashwagandha-Withania somnifera for sustainable socioeconomic empowerment*. *Pharmacognosy Reviews*, 18(35), 91–100. https://doi.org/10.5530/phrev.2024.18.10

Sprengel, M., Laskowski, R., & Jost, Z. (2025). *Withania somnifera (Ashwagandha) supplementation: A review of its mechanisms, health benefits, and role in sports performance*. Nutrition & Metabolism, 22, Article 9. https://doi.org/10.1186/s12986-025-00902-7

Mikulska, P., Malinowska, M., Ignacyk, M., Szustowski, P., Nowak, J., Pesta, K., Szeląg, M., Szklanny, D., Judasz, E., Kaczmarek, G., Ejiohuo, O. P., Paczkowska-Walendowska, M., Gościniak, A., & Cielecka-Piontek, J. (2023). *Ashwagandha (Withania somnifera)-Current research on the health-promoting activities: A narrative review*. Pharmaceutics, 15(4), 1057. https://doi.org/10.3390/pharmaceutics15041057

Shinde, S., Balasubramaniam, A. K., & Mulay, V. (2023). *Extraction techniques and phytochemical significance of Ashwagandha*. *ACS Omega*, 8, 40982–41003. https://doi.org/10.1021/acsomega.3c03491

Gupta, G., Rana, A. C. (2007). *Withania somnifera (Ashwagandha): A review*. *Pharmacognosy Reviews*, 1(2), 129–136. https://doi.org/10.5530/phrev.2007.2.6

Tandon, N., Yadav, A., & Sharma, R. K. (2024). *Ashwagandha as adaptogen: Physiological and endocrinal effects*. *Journal of Herbal Medicine*, 36, 100650. https://doi.org/10.1016/j.hermed.2024.100650

Singh, N., & Bhushan, O. P. (2024). *Neuroprotective potential of Withania somnifera: Mechanisms and clinical evidence*. *Journal of Ethnopharmacology*, 294, 115240. https://doi.org/10.1016/j.jep.2024.115240

Patel, R., & Sharma, M. (2025). *Cognitive benefits of Ashwagandha supplementation in middle-aged adults*. *Nutritional Neuroscience*, 28(2), 231–245. https://doi.org/10.1080/1028415X.2025.1101123

Li, X., & Zhao, Q. (2024). *Ashwagandha's influence on sleep patterns: Evidence from clinical trials*. *Sleep Medicine Reviews*, 68, 101840. https://doi.org/10.1016/j.smrv.2024.101840

Fernandes, M., et al. (2025). *Effects of Withania somnifera on glucose metabolism and insulin sensitivity*. *Journal of Endocrinological Investigation*, 48(1), 85–97. https://doi.org/10.1007/s40618-024-01825-8

Ahmed, A., & Hassan, M. (2024). *Cardioprotective roles of Ashwagandha in metabolic syndrome*. *Cardiovascular Therapeutics*, 2024, 8856123. https://doi.org/10.1155/2024/8856123

Kumar, S., & Mishra, P. (2025). *Antioxidant and anti-inflammatory effects of Withania somnifera in older adults*. *Journal of Herbal Pharmacotherapy*, 15(3), 148–167. https://doi.org/10.1080/15228967.2025.1168902

Rodriguez, A. L., & Green, M. R. (2025). *Ashwagandha supplementation and immune modulation: A randomized clinical analysis*. *Clinical Nutrition*, 44(1), 112–120. https://doi.org/10.1016/j.clnu.2025.01.005

Das, S., & Ghosh, S. (2024). *Effect of Ashwagandha on stress hormone regulation and mood disorders*. *Journal of Psychiatric Research*, 159, 276–286. https://doi.org/10.1016/j.jpsychires.2024.05.014

Lee, H. J., & Kim, J. Y. (2025). *Role of Withania somnifera in sports endurance and recovery*. *Journal of Sports Science & Medicine*, 24(4), 587–599. https://doi.org/10.52082/jssm.2025.587

Wang, Y., & Qi, J. (2024). *Phytochemical profiling of Ashwagandha and implications for nutraceutical development*. *Journal of Natural Products*, 87(8), 456–469. https://doi.org/10.1021/acs.jnatprod.4c00095

Verma, R., & Singh, P. (2025). *Withanolide biosynthesis in Withania somnifera: Genetics and metabolic pathways*. *Plant Physiology and Biochemistry*, 189, 115468. https://doi.org/10.1016/j.plaphy.2025.115468

Technology

The New Knowledge Revolution: Integrating Education, Technology and Indigenous Wisdom for Ātmanirbhar Bharat—A Five-Dimensional Perspective

Manohar Lal (Kaushik)

Abstract

Humanity is entering a New Knowledge Revolution in which education, artificial intelligence, technology, and indigenous wisdom increasingly interact to shape social and economic development. Agriculture provides a particularly important arena for this transformation because it links science, society, culture, and ecology. This paper proposes a Five-Dimensional Model of Human Empowerment comprising the Social, Cultural, Technological, Intellectual, and Spiritual dimensions. The Spiritual dimension functions as a meta-dimension that provides ethical orientation and balance to the other four. The framework is applied to agriculture and Atmanirbhar Bharat, emphasizing that technological innovation must be integrated with social inclusion, cultural continuity, intellectual development, and ecological responsibility. Drawing upon Indian and global thinkers, the paper argues that sustainable development requires the harmonious integration of education, technology, and indigenous wisdom. Such integration can help create a knowledge society that is productive, equitable, meaningful, and environmentally sustainable.

Keywords: Agriculture, Artificial Intelligence, Atmanirbhar Bharat, Indigenous Wisdom, Sustainability, Five-Dimensional Model.

1. Introduction

The world has moved through the Agricultural, Industrial, Information, and Digital Revolutions and is now entering a **New Knowledge Revolution**. Unlike earlier transformations driven primarily by material or informational power, this revolution is characterized by the interaction of knowledge, intelligence, ethics, and human values.

India's vision of **Atmanirbhar Bharat** and the objectives of **NEP 2020** acquire special significance in this context. Self-reliance today means the ability to combine indigenous strengths with modern science and technology. Agriculture represents one of the most important domains where such integration can occur.

Modern technologies such as artificial intelligence, biotechnology, sensors, drones, and digital platforms have enormous potential to improve agricultural productivity and resilience. However, technological advancement alone cannot guarantee sustainable or equitable development. A broader framework is required to balance technological progress with social justice, cultural continuity, intellectual growth, and ethical responsibility.

2. Philosophical Foundations

Many contemporary challenges—including ecological degradation, social inequality, and ethical uncertainty—arise from fragmented approaches to knowledge. Increasingly, scholars and thinkers across the world recognize the need for more integrated perspectives.

Indian intellectual traditions have long emphasized unity amid diversity. Thinkers such as Vivekananda, Tagore, Gandhi, Sri Aurobindo, Nehru, and Amartya Sen, though differing in emphasis, all stressed the importance of combining knowledge with ethical and human values.

A contemporary expression of this integrative perspective is the **Cyber-Physical-Social System (CPSS)**, in which physical processes, digital technologies, and human relationships continuously interact. Yet CPSS by itself does not provide moral direction. For this reason, a broader human-centred framework is required.

3. The Five-Dimensional Model of Human Empowerment

The proposed framework consists of five interrelated dimensions:

The distinguishing feature of the model is the **Spiritual Meta-**

Former Director, SOCIS, IGNOU, New Delhi, & Vice-President, Indian Social Science Academy, Allahabad
**Corresponding author email :* prof.manohar.lal@gmail.com

Dimension, which serves as an integrating axis rather than a separate sector. It provides ethical direction and balance to the other four dimensions.

Dimension	Core Meaning	Agricultural Relevance
Social	Cooperation, justice, inclusion	Farmer participation, cooperatives, rural institutions
Cultural	Identity, continuity, creativity	Indigenous knowledge, traditional practices, biodiversity
Technological	Innovation and capability	AI, IoT, robotics, precision agriculture
Intellectual	Inquiry and learning	Research, education, knowledge-sharing
Spiritual	Purpose, harmony, ethics	Ecological responsibility and respect for life

Without such balance:

- Technology may become exploitative,
- Intellect may become purely instrumental,
- Culture may become rigid,
- Society may become fragmented.

The model therefore seeks balanced development rather than one-dimensional progress.

Agriculture illustrates the interdependence of all five dimensions. It depends simultaneously on scientific knowledge, technological innovation, cultural traditions, social cooperation, and ecological ethics.

4. Integrating Education, Technology and Indigenous Wisdom Education

Education must evolve from the simple transmission of information to the cultivation of wisdom, creativity, and responsibility. NEP 2020 provides opportunities for interdisciplinary and experiential learning. Agricultural education should integrate science, ethics, ecology, and local knowledge.

Farmers themselves should be recognized as knowledge partners whose experience embodies generations of adaptation and ecological understanding.

Technology

Technologies such as AI-driven weather forecasting, precision irrigation, drone mapping, and decision-support systems can significantly improve agricultural productivity and sustainability.

However, technology should function as an enabler rather than a master. The objective should be **Right Technology in the Right Context**, strengthening local capabilities rather than creating dependency.

Indigenous Wisdom

Traditional agricultural practices contain valuable ecological knowledge relating to soil conservation, seed diversity, water management, and sustainable cultivation.

Rather than viewing traditional and modern knowledge as opposites, they should be combined to create a hybrid intelligence in which local wisdom is strengthened by scientific and technological advances.

Together, education, technology, and indigenous wisdom form the basis of a **Living Knowledge Ecosystem** that is socially inclusive, culturally rooted, technologically creative, intellectually open, and ethically guided.

5. Ethical Challenges of Technology

Every technological advance generates both opportunities and risks. Artificial intelligence and digital systems can improve productivity, but they may also increase inequality, surveillance, dependency, and ecological stress.

The central challenge is therefore not merely technological but ethical.

A new framework of **Technological Dharma** is required. In this context, Dharma refers to innovation guided by responsibility, ecological awareness, social justice, and long-term sustainability.

Three guiding questions become important:

1. Does the technology enhance human dignity and autonomy?
2. Does it sustain ecological balance?
3. Are its benefits distributed fairly?

When technology is guided by ethical principles, it becomes an instrument of empowerment rather than domination.

6. Implementing the Framework for Atmanirbhar Krishi Bharat

Practical implementation requires coordinated action in education, technology, society, and governance.

Educational Reforms

- Interdisciplinary curricula.
- Field-based experiential learning.
- Lifelong learning platforms for farmers.
- Integration of ethics and sustainability into agricultural education.

Technological Measures

- Open-source agricultural AI systems.
- Affordable precision tools

for small farmers.

- Transparent and accountable digital platforms.
- Community-based data systems.

Social and Cultural Initiatives

- Strengthening farmer cooperatives.
- Preservation of indigenous agricultural knowledge.
- Community-based knowledge-sharing networks.
- Promotion of cultural practices linked with ecological sustainability.

Policy Measures

- Ethical assessment of emerging technologies.
- Integration of indigenous knowledge into research systems.
- Collaboration among agriculture, education, and technology institutions.
- Incentives for innovations that combine productivity with sustainability.

One possible institutional model is a **Digital Krishi-Panchayat**, where farmers, scientists, educators, and technologists jointly create and evaluate solutions using both local knowledge and modern digital tools.

7. Conclusion

The New Knowledge Revolution calls for a shift from knowledge as power to knowledge as responsibility. The major challenges of the twenty-first century—ecological instability, inequality, and social fragmentation—cannot be solved through technology alone.

The Five-Dimensional Model of Human Empowerment offers a framework for integrating technological innovation with social inclusion, cultural continuity, intellectual development, and ethical responsibility. Within this framework, the Spiritual Meta-Dimension functions as the guiding principle that maintains balance among the other dimensions.

Applied to agriculture, the model supports a vision of **Atmanirbhar Krishi Bharat** in which education, technology, and indigenous wisdom work together to create a productive, equitable, and sustainable future.

The ultimate goal of the New Knowledge Revolution is not merely smarter machines, but wiser societies—where human creativity, technological capability, and moral responsibility evolve together.

हिन्दी कविता

'नैनो'

निधि त्यागी

सूक्ष्म नही अतिसूक्ष्म हूँ
पदार्थ नही मात्र कण हूँ,
विज्ञान की प्रगति को अग्रसित करता
सबके समक्ष 'नैनो' से प्रचिलित हूँ।
क्षेत्र कोई भी हो विज्ञान का
भौतिक, चिकित्सा या रसायन,
एक नई दिशा मिली है
प्रगतिशील हुआ है हर अनुसंधान।
हर शोध को एक नया आयाम देता
पदार्थ का एक विशेष गुण हूँ।
विज्ञान की प्रगति को अग्रसित करता
सबके समक्ष 'नैनो' से प्रचिलित हूँ।
सांख्यिकीय हो या क्वांटम
आणविक हो या जैविक,
हर प्रभाव को वर्णित करता
तकनीकी हो या अभियान्त्रिक।
प्रोद्योगिकी के क्षेत्र में परिभाषित
अति सूक्ष्म मशीनें बनाने का आधार हूँ
विज्ञान की प्रगति को अग्रसित करता
सबके समक्ष 'नैनो' से प्रचिलित हूँ।
अणुओं की संरचना को पुनरूर्निधारित करता
पदार्थो के स्वरूप को सूक्ष्म बनाता,
चिकित्सा के क्षेत्र में प्रयत्नशील
नये भौतिक प्रतिभासों का पता लगाता।
21 वीं सदी को एक नई पहचान देता
मीटर के अरबवें हिस्से का नाम हूँ।
विज्ञान की प्रगति को अग्रसित करता
सबके समक्ष 'नैनो' से प्रचिलित हूँ।

सहायक प्रोफेसर, भौतिक विज्ञान,
शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
ईमेल : nidhi.tyagi91@yahoo.com

PRITHVIPUR ABHYUDAY SAMITI, LUCKNOW

Office: Office No. 04, 1st Floor, Eldeco Xpress Plaza,
Uttrathia Raebareli Road, Lucknow
Website: www.prithvipur.org Email: pasofficial14@gmail.com

A) Bhagidari Fellowship (Partnership Fellowship)

- Prithvipur Abhyuday Samiti, Lucknow has initiated the **'Bhagidari Fellowship'** specifically for meritorious and talented students from economically weaker sections of society studying in **Classes 9th to 12th**.
- The primary objective of this fellowship is to provide financial and academic assistance to bright students, ensuring they can pursue and complete their secondary and higher secondary education without any financial constraints, paving the way for a brighter future.

B) Prithvipur Samman (Biennial Award)

- The Samiti has established the prestigious **'Prithvipur Samman'** to honor and recognize distinguished achievers who have made exemplary and outstanding contributions to society, education, rural development, or other specialized fields.
- This is a **biennial national award** conferred once every two years to celebrate the dedication and impactful work of exceptional individuals.

C) Gramin Goshthi (Rural Interactive Forums)

- To promote awareness, community dialogue, and sustainable development in rural areas, the Samiti periodically organizes **'Gramin Goshthi'** (Rural Seminars and Workshops).
- These interactive forums aim to empower rural youth, farmers, and local citizens by discussing contemporary issues, highlighting the importance of education, and raising awareness about social welfare and development schemes to integrate them into the mainstream.

D) Collaboration in Kahaar Publication

- In an effort to bridge the gap between science and society, the Samiti actively collaborates in the publication and dissemination of the popular multilingual People's Science Magazine **'Kahaar'**.
- Through this partnership, the Samiti works to communicate scientific concepts, environmental awareness, and practical knowledge in a simplified manner to school/college students and rural youth, fostering a scientific temperament among the masses.

PROF. H. S. SRIVASTVA FOUNDATION FOR SCIENCE & SOCIETY

Office No. 04, 1st Floor, Eldeco Xpress Plaza, Uttrathia Raebareli Road, Lucknow
Website : : www.phssfoundation.org Email:phssoffice@gmail.com

Professor H. S. Srivastava Foundation for Science and Society is a national academic, non-profit voluntary organization registered under the society Act 1860, in Lucknow.

A) CENTRE FOR SUSTAINABLE AGRICULTURE AND ENVIRONMENT-

- A Research and Development Centre of the Foundation, **'Centre for Sustainable Agriculture and Environment'** is working for the basic and translational research in these fields, Science Communication, Development of women and youth leadership and poverty elimination in the rural and peri-urban societies.
- The financial support is earned through the royalty, donation and sponsorship

B) Publication of International Research Journals-

- The Foundation is publishing a monthly research journal Physiology and Molecular Biology of Plants (PMBP; Clarivate JCR Impact Factor 3.3) in collaboration with Springer Nature from 2002 which was started in 1995 by another society.

C) Conferences, Seminar and Workshops-

- The Foundation is organises annual national/International conferences and periodical workshop, seminar and training programmes for scientific interaction and science communication regularly.
- An Annual National Rural Science Congress has been started from 2022 to explore the issues and challenges of sustainable rural development in India.

D) PHSS Foundation Awards-

- Five biennials' national awards are conferred to the distinct achievers in the different fields by the Foundation from 2012.

E) Popular Science Magazine-

- A quarterly Multilingual People Science Magazine Kahaar (www.kahaar.in) is published from 2014 to communicate science in general and concepts and practices of sustainable agriculture and environment in particular for college and school students and rural youth.

We invite, you all the like-minded people across the age, gender, geography, religion, and profession to join with us, collaborate and light the lamp for a better tomorrow.